खंड 2
जनसंख्या एवं मानव विकास

खंड 2 : जनसंख्या एवं मानव विकास

पाठ्यक्रम का दूसरा खंड जनसंख्या एवं मानव विकास है। इसमें तीन इकाइयाँ हैं। ये जनांकिकी, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं पोषण विषयों से संबंधित है। इस प्रकार इस खंड का संबंध सामाजिक क्षेत्र से है।

इकाई 5 जनांकिकीय अभिलक्षण है। इसमें दशकों से जनसंख्या की वृद्धि पर चर्चा की गई है। जन-उर्वरकता और मर्त्यता की व्याख्या की गई है। शहरीकरण, लिंगानुपात, जनसंख्या पिरामिड और लिंग एवं गुणवत्ता के आधार पर जनांकीय संक्रमण के प्रश्न पर भी चर्चा की गई है। जनसंख्या वृद्धता की संकल्पना पर जनांकीय लाभांश और राष्ट्रीय जनसंख्या नीतियों के संदर्भ में चिन्तन मनन किया गया है।

इकाई 6 शिक्षा क्षेत्र है। यह मानवीय पूँजी और मानव विकास से प्रारंभ हुई है। शिक्षा के स्तर, लिंग भेद एवं गुणवत्ता के आयामों में शिक्षा क्षेत्र की अवस्था की व्याख्या की गई है। शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय तथा वित्तीयन के वैकल्पिक स्रोतों के संदर्भों में शिक्षा के वित्तीयन के प्रश्न पर विचार किया गया है।

इकाई 7 स्वास्थ्य और पोषण पर है। यह स्वस्थता और पोषण के मापन से प्रारंभ होती है। स्वास्थ्य व्यय के स्रोत, भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य परिचर्या व्यवस्था और राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति पर भी इसी इकाई में चर्चा की गई है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 5 जनांकिकीय अभिलक्षण*

संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 विषय प्रवेश

5.2 भारत की जनसंख्या : आकार एवं वृद्धि

5.2.1 जनसंख्या वृद्धि

5.3 जन्म-मरण के आँकड़े

5.3.1 प्रजनन दरें

5.3.2 मर्त्यता दरें

5.4 जनांकिकीय संक्रमण

5.4.1 शहरीकरण

5.4.2 लिंग अनुपात

5.4.3 जनसंख्या पिरामिड

5.4.4 निर्भरता अनुपात

5.5 जनसंख्या वृद्धता

5.5.1 जनांकिकीय लाभांश

5.5.2 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (NPP)

5.6 सार-संक्षेप

5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- 'जनसंख्या घनत्व' (DoP) और 'जनसंख्या वृद्धि' (GoP) की संकल्पनाएँ स्पष्ट कर सकें;
- 'जन्म-मरण के आँकड़े' संबंधी मूल जनांकिकीय समीकरण को उसके मुख्य अवयवों के विवरण के साथ बता सकें;
- विभिन्न प्रकार की 'प्रजनन' एवं 'मर्त्यता' दरें, उनके गुण-दोषों के साथ स्पष्ट कर सकें;
- भारत में 'जनांकिकीय संक्रमण' की प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर सकें;
- 'जनसंख्या वृद्धता' एवं 'जनांकिकीय लाभांश' की संकल्पनाओं का ख़ाका खींच सकें; तथा
- राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 के उद्देश्य एवं उपलब्धियाँ इंगित कर सकें।

*प्रो. सुमानेश दत्ता, असम विश्वविद्यालय

5.1 विषय प्रवेश

जनांकिकी का अर्थ है – 'मानव जनसंख्या का उसके आकार, संरचना एवं विकास के साथ वैज्ञानिक अध्ययन।' जनांकिकी का अध्ययन इसलिए आवश्यक है कि अपनी संरचना, संयोजन एवं संवृद्धि के लिहाज से मानव जनसंख्या आर्थिक संवृद्धि एवं विकास से महत्त्वपूर्ण संबद्धता दर्शाती है। जनसंख्या ही विकास गतिविधियों के लिए श्रमापूर्ति का एक मात्र एवं अंतिम स्रोत होती है। यह विकास की अंतिम लाभार्थी भी होती है। अतः, जनसंख्या आर्थिक विकास का साधन भी है और साध्य भी। भारत में, जनांकिकीय आँकड़े जनगणना की रिपोर्टों में उपलब्ध होते हैं, जो कि दस वर्षों में एक बार नियमित रूप से कराई जाती है। इस प्रकार की अंतिम जनगणना वर्ष 2011 में करवाई गई थी। प्रस्तुत इकाई भारत के महत्त्वपूर्ण जनांकिकीय अभिलक्षणों की ही गहराई से समीक्षा कर रही है।

5.2 भारत की जनसंख्या : आकार एवं वृद्धि

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत की जनसंख्या 121.1 करोड़ या 1211 मिलियन थी। मिलियन में ही प्रस्तुत करने पर, यह वर्ष 2001 में 1029, 1991 में 846, 1981 में 683, 1971 में 548, 1961 में 439 और 1951 में 361 थी। वर्तमान में, भारत चीन के बाद दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है। विश्व बैंक के आँकड़ों के अनुसार (वर्ष 2016 में), चीन की जनसंख्या 1359 मिलियन और भारत की जनसंख्या 1324 मिलियन अर्थात् क्रमशः 135.9 करोड़ और 132.4 करोड़ है। तथापि, वर्ग किलोमीटर में भारत का भौगोलिक क्षेत्र चीन के भौगोलिक क्षेत्र से काफी कम है। वह जनांकिकीय मापदंड जो भू-क्षेत्र के प्रति वर्ग किलोमीटर लोगों की संख्या का लेखा-जोखा करता है, जनसंख्या घनत्व (DoP) कहलाता है। इसे निम्नवत् मापा जाता है–

$$\text{DoP} = \frac{\text{किसी भौगोलिक क्षेत्र की जनसंख्या}}{\text{उस भौगोलिक क्षेत्र का वर्ग किमी. में भू-क्षेत्र}}$$

वर्ष 2011 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार, भारत का जनसंख्या घनत्व 382 है। विश्व बैंक के आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2016 हेतु, भारत का जनसंख्या घनत्व 445 है, चीन का 147, अमेरिका का 35 और ऑस्ट्रेलिया का मात्र 3।

ये आँकड़े दर्शाते हैं कि इन देशों के बीच भारत की स्थिति सर्वाधिक सघन रूप से जनाकीर्ण देश की है। ये आँकड़े यह भी दर्शाते हैं कि विश्व की जनसंख्या विभिन्न क्षेत्रों में समान रूप से वितरित नहीं है। यह बात भारत के भीतर भी सिद्ध होती है। भारत के कुछ राज्य घने बसे हैं जबकि कुछ में जनसंख्या अपेक्षाकृत विरल है। बिहार (1106), पश्चिम बंगाल (1028) और उत्तर प्रदेश (829) राज्य घने बसे हैं। दूसरी ओर, हिमाचल प्रदेश (123), सिक्किम (86), मिज़ोरम (52) और अरुणाचल प्रदेश (17) राज्य विरल रूप से बसे हैं। मोटे तौर पर कहें तो, पर्वतों, पहाड़ियों, रेगिस्तान तथा वृहद् गहन वन वाले क्षेत्र विरल रूप से बसे हैं जबकि उर्वर भूमि, उद्योग, बेहतर परिवहन सुविधाओं आदि वाले क्षेत्र सघन रूप से बसे हैं।

5.2.1 जनसंख्या वृद्धि

किसी भी दिए गए स्थान की जनसंख्या का आकार समय के साथ दो माध्यमों से बदलता है – (i) प्रवास, और (ii) प्राकृतिक कारक, जैसे जन्म और मृत्यु। कालांतर में

जनसंख्या के आकार में परिवर्तन, जो कि उसके आधार वर्ष मान के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है, जनसंख्या वृद्धि कहलाता है। तद्नुसार, जनसंख्या वृद्धि की दर (अथवा केवल वृद्धि दर) निम्नवत् आकलित की जाती है– जनसंख्या वृद्धि की दर $(\text{RGP}) = \frac{P_{t+1}-P_t}{P_t} \times 100$, जहाँ P_t समयबिंदु 't' पर उच्चतम जनसंख्या का आधार है और P_{t+1} समयबिंदु '$t + 1$' पर उच्चतम जनसंख्या का आकार है। जनसंख्या की वृद्धि दर प्रतिशत में व्यक्त की जाती है।

वर्ष 2001 में, भारत की जनसंख्या 102.85 करोड़ थी; वर्ष 2011 में यह बढ़कर 121.06 करोड़ हो गई। वर्ष 2001 से 2011 की अवधि में जनसंख्या की वृद्धि दर 17.7 (अथवा 18) रही। तथापि, जब जनसंख्या वृद्धि की दशकीय दर 10 से विभाजित की जाती है तो हमें जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त होती है जो वर्तमान उदाहरण में 1.8 प्रतिशत है। भारत की जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर 1951.61 में 22 प्रतिशत से बढ़कर 1961.71 में 25 प्रतिशत हो गई। उसके बाद, पहले तो यह अति मंथर गति से स्थिरतापूर्वक, परंतु वर्ष 1991 से त्वरित दर से गिरती रही है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, जनसंख्या वृद्धि दर भारत के राज्यों में एकसमान नहीं रही। कुछ राज्यों ने राष्ट्रीय वृद्धि दर की तुलना में उच्चतर औसत वार्षिक वृद्धि दर दर्शाई है। उदाहरण के लिए, मेघालय (2.8 प्रतिशत), बिहार (2.6 प्रतिशत), अरुणाचल प्रदेश (2.6 प्रतिशत), जम्मू एवं कश्मीर (2.4 प्रतिशत), राजस्थान (2.2) आदि। निम्नवत् वृद्धि दर नागालैंड में रही (–0.6 प्रतिशत)।

5.3 जन्म-मरण के आँकड़े

जनसंख्या गतिकी को समझने के लिए जन्म (प्रजनन) दर, मृत्यु (मर्त्यता) दर और प्रवास प्रतिमान का उनकी मापन विधियों के साथ एक वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करना आवश्यक है। मूल जनांकिकीय समीकरण निम्नवत् है –

$$P_{t+1} - P_t = (\text{जन्म संख्या} - \text{मृत्यु संख्या}) + (\text{आगमन} - \text{बहिर्गमन})$$

यथा, जनसंख्या परिवर्तन = प्राकृतिक जनसंख्या वृद्धि + निवल प्रवास

जन्म-मरण के आँकड़ों में दो जनसांख्यिकी मूल सिद्धांत होते हैं, यथा– जन्म संख्या (प्रजनन) एवं मृत्यु संख्या (मर्त्यता)। इसका संबंध प्रवास, विवाह, दीर्घायु, आदि से भी होता है। इस भाग में हम चार प्रकार की प्रजनन दरों और चार ही प्रकार की मर्त्यता दरों पर चर्चा करेंगे।

5.3.1 प्रजनन दरें

चार महत्त्वपूर्ण प्रकार के प्रजनन मापदंड इस प्रकार हैं – (i) अशोधित जन्म दर (CBR), (ii) सामान्य प्रजनन दर (GFR), (iii) आयु-विशिष्ट प्रजनन दर (ASFR), तथा (iv) कुल प्रजनन दर (TFR)।

अशोधित जन्म दर (CBR) : किसी भी वर्ष (अथवा समय) में, किसी क्षेत्र में अशोधित जन्म दर (CBR) को उस वर्ष अथवा समय उस क्षेत्र में जीवित जन्म संख्या प्रति हज़ार जनसंख्या के रूप में परिभाषित किया जाता है।

तद्नुसार, $\text{CBR} = \frac{\text{B}}{\text{P}} \times 1000$, जहाँ B किसी समय-प्राधार (सामान्यतः कोई पूरा वर्ष) के भीतर किसी परिभाषित भौगोलिक क्षेत्र में पंजीकृत कुल जीवित जन्मसंख्या है और

P परिभाषित स्थान व समय में वर्ष-मध्य जनसंख्या है। भारत में, उक्त दर (CBR) का रुझान दर्शाता है कि यह दर 1941.51 में 40 से घटकर 1991-2001 में लगभग 26 और वर्ष 2011 में लगभग 22 रह गई। देश में इस दर में गिरावट हेतु मुख्य कारण हैं – (i) सरकार द्वारा परिवार नियोजन कार्यक्रमों को प्रोत्साहन, (ii) साक्षरता का प्रसार एवं लोगों के शिक्षा-स्तर में वृद्धि, (iii) 'छोटा परिवार' आदर्श अपनाने के लाभों के प्रति लोगों के बीच जागरूकता बढ़ाना, (iv) सवेतन कार्य में महिलाओं की अधिक भागीदारी, तथा (v) महिलाओं के लिए जनन एवं पालन-पोषण की अवसर लागत का बढ़ना। भारत में उक्त दर (CBR) की तुलना अमेरिका में लगभग 14, चीन में 12 और जापान में 9 से की जा सकती है। इस प्रकार, विकसित देशों की तुलना में भारत की यह दर (CBR) ऊँची है। इसके लिए उत्तरदायी प्रमुख कारक निम्नवत् हैं – (i) उच्च शिशु मर्त्यता दर; (ii) बेटा जनने की उच्च अधिमानता; (iii) परंपरागत कृषिक समाज में बच्चों का उच्च आर्थिक मूल्य; (iv) परिवार नियोजन एवं गर्भ निरोधक विषयक जानकारी का अभाव; (v) अल्पायु में विवाह एवं बहु-विवाह प्रथा; (vi) माता-पिता की निम्न शिक्षा; तथा (vii) धार्मिक मान्यताएँ एवं प्रथाएँ।

अशोधित जन्म दर के गुण-दोष : अशोषित जन्मदर (CBR) समझने और आकलन करने में सरल है। इसकी एक ही क्षेत्र के दो दूरस्थ प्रायः समयबिंदुओं पर जन्म दरों में युक्तियुक्त रूप से तुलना की जा सकती है, क्योंकि, जन-समुदाय का आयु एवं लिंग वितरण आमतौर पर अल्पावधि में नहीं बदलता। उक्त दर (CBR) कुल जनसंख्या को विचारार्थ लेती है, जिसमें से लगभग आधे पुरुष होते हैं जो कि प्रसूति में सीधे शामिल नहीं होते। इसके अलावा, महिला जनसंख्या का मात्र एक सीमित भाग (15–49 वर्ष) ही जनन में सक्षम होता है।

सामान्य प्रजनन दर (GFR) : यह दर (GFR) जनन आयु (15–49 वर्ष) की प्रति एक हज़ार महिलाओं के अनुसार जीवित जन्मों का अनुपात होती है। इसे निम्नवत् आकलित किया जाता है – $GFR = \frac{\mathrm{B}}{\sum_{x=15}^{x=49} {}^{f}P_x} \times 1000$, जहाँ B कुल जीवित जन्म संख्या (CBR के अनुसार) और $\sum_{x=15}^{x=49} {}^{f}P_x$ आयु वर्ग 15–49 में महिलाओं की वर्ष. मध्य जनसंख्या है, जिन्हें आमतौर पर महिलाओं की 'जनन-आयु' की दो सीमाओं के रूप में देखा जाता है।

सामान्य प्रजनन दर के गुण-दोष : यह दर (GFR) उक्त दर (CBR) के उदाहरण में अपनाए गए अशोधित दृष्टिकोण को पराजित करती है। यह अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक है क्योंकि यह केवल जनन आयु वाली महिला जनसंख्या के संदर्भ में कुल जन्मसंख्या पर विचार करती है। ठण्डे, शीतोष्ण एवं गर्म जलवायु क्षेत्रों से आने वाली लड़कियों की यौवनारंभ आयु एकसमान नहीं होती। अतः, उक्त सूत्र प्रयोग करने से पूर्व महिलाओं की जनन आयु की दो सीमाओं के संबंध में एक विवेकसम्मत निर्णय लिया जाना आवश्यक होता है। इसके अलावा, प्रजनन शक्ति आयु के साथ बदलती है, यथा प्रजनन-शक्ति अवधि की दो सीमाओं के भीतर हो। इसी कारण, आयु-वर्ग 15–49 के समग्र महिला वर्ग पर एक साथ विचार किया जाना अनुपयुक्त होगा।

आयु-विशिष्ट प्रजनन दर (ASFR) : किसी भी आयु.वर्ग के लिए यह दर (ASFR) जीवित जन्म संख्या प्रति स्त्री और किसी आयु-वर्ग विशेष की वर्ष.मध्य स्त्री जनसंख्या का अनुपात होता है। यह दर (ASFR), तद्नुसार, निम्नवत् दर्शाई जाती है– ASFR $= \frac{B_x}{{}^{f}P_x} \times 1000$ जहाँ B_x, x से x+1 आयु-वर्ग में स्त्रियों द्वारा दी गई जीवित जन्म

संख्या है और ${}^{f}P_x$ x आयु-वर्ग में स्त्री जनसंख्या का औसत आकार है। उक्त दर (ASFR) प्रायः 15 से 49 आयु के प्रत्येक एकल वर्ष हेतु अथवा 15–19, 20–24,.... जैसे किन्हीं आयु-समूहों के लिए आकलित की जाती है। उपर्युक्त सूत्र x आयु की स्त्रियों की आयु-विशिष्ट प्रजनन दर (ASFR) दर्शाता है। अंश और हर में आवश्यक किंचित परिवर्तन पर हम दो आयु-सीमाओं के बीच उक्त दर (ASFR) ज्ञात कर सकते हैं।

गुण और दोष : चूँकि यह आयु-विशिष्ट होती है, 15–49 वर्ष के भीतर विभिन्न आयु-समूहों में आने वाली स्त्रियों की प्रजनन दर का ध्यान रखा जाता है। आमतौर पर उक्त दर (ASFR) यौवनारंभ के शुरुआती वर्षों में कम ही होती है, यह 30 के आस-पास तक तेज़ी से बढ़ती है और फिर 49 वर्ष की आयु के आस-पास लगभग शून्य तक गिर जाती है। जनन आयु से आने वाली सभी स्त्रियों द्वारा जन्म देना आवश्यक नहीं होता। केवल जो उस आयु-समूह में विवाहित हैं और जननक्षम हैं, प्रायः वही ऐसा करती हैं। उक्त दर (ASFR) जनन आयु-समूह में कुछ महिलाओं की वैवाहिक प्रस्थिति के साथ.साथ बध्यता घटक को भी अनदेखा करती है।

कुल प्रजनन दर (TFR) : यह दर दो मान्यताओं के अंतर्गत किसी जन-समुदाय में प्रजनन शक्ति का एक सामान्य सूचकांक प्रस्तुत करती है– (i) प्रत्येक स्त्री जो जनन आयु में प्रवेश करती है, प्रत्येक आयु हेतु उक्त दर (ASFR) के अनुसार जीवित जन्म देती है, और (ii) कोई भी स्त्री जननीय अवधि पूर्ति से पहले देह नहीं त्यागती अर्थात् मरती नहीं है। कुल प्रजनन दर इस सूत्र से आकलित की जाती है TFR = $\sum_{x=15}^{x=49} \frac{B_x}{{}_{49}{}^{f}P_{15}}$, जो कि आयु-विशिष्ट प्रजनन दरों का योग मात्र है। इस सूत्र के अनुसार, यदि 1000 स्त्रियाँ एक साथ जनन आयु में प्रवेश करती हैं तो उक्त दर (TFR) इन स्त्रियों द्वारा अपनी जननीय अवधि से निकास के समय से पूर्व जीवित जन्म संख्या दर्शाएगी। यदि गुणक 1000 हटा दिया जाए तो यह दर (TFR) अपनी जननीय अवस्था के अंत में माँओं द्वारा जनित शिशुओं की औसत संख्या मात्र ही दर्शाएगी। जब उक्त दरें (ASFRs) आयु-समूहों 15–19, 20–24,....45–49 के लिए आकलित की जाती हैं तो यह दर निम्नवत् परिकलित की जाती है– TFR = $\frac{5 \times \sum_{15}^{49} ASFR}{1000}$.

गुण और दोष : यह दर (TFR) जन्मदर का सर्वाधिक प्रयुक्त सूचकांक है। यह स्त्री जनसंख्या की समग्र प्रजनन अवधि को ध्यान में रखती है और साथ ही, विशिष्ट आयु. समूहों से आने वाली स्त्रियों की प्रजनन शक्ति को भी। यह दर (TFR) इस कारण कम सटीक होती है कि हर स्त्री 15 वर्ष की आयु में अपना प्रजनन काल आरंभ नहीं करती और कुछ शायद बच्चे जन्में ही नहीं।

वर्ष 1971 में, भारत की कुल प्रजनन दर (TFR) 5.2 आकलित की गई; परंतु वर्ष 1991 में यह गिरकर 3.6 और फिर वर्ष 2002 में मात्र 3.0 रह गई। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की मानव विकास रिपोर्ट, 2001 के अनुसार, विश्व जनसंख्या की कुल प्रजनन दर वर्ष 1975 में 4.5 से गिरकर वर्ष 1995-2000 में मात्र 2.8 रह गई। भारत में, यह दर (TFR) वर्ष 2002 में 3.0 से गिरकर वर्ष 2012 में 2.4 रह गई। नवीनतम उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2013 में यह दर 2.3 रही। इस दर (TFR) का इतना उच्च मान होने का अर्थ है कि वर्तमान अभिभावी आयु-विशिष्ट प्रजनन दरों पर

भारत में कोई भी स्त्री अपना प्रजनन जीवन पूर्ण होने से पूर्व जनसंख्या में औसतन 2.4 बच्चों का इज़ाफ़ा कर देती है। यद्यपि उक्त दर (TFR) 40 वर्षों से भी अधिक अवधि में वर्ष 2013 के दौरान 2.3 के स्तर पर आ गई है, यह अब भी काफ़ी ऊँची है और पुनर्स्थापन स्तरीय प्रजनन (यथा, TFR = 2.1) से 0.2 अधिक है, जो कि एक गंभीर चिंता का विषय है।

5.3.2 मर्त्यता दरें

इस उपभाग में हम चार मर्त्यता दरों पर चर्चा करेंगे, यथा- अशोधित मृत्यु दर (CDR), आयु-विशिष्ट मृत्यु दर (ASDR), शिशु मर्त्यता दर (IMR) तथा जन्म के समय जीवन. प्रत्याशा। किसी क्षेत्र में किसी भी वर्ष में, प्रथम (CDR) अर्थात् अशोधित मर्त्यता दर (CMR) के उस वर्ष में मृत्यु संख्या प्रति हज़ार जनसंख्या के रूप में परिभाषित किया जाता है, यथा CDR = $\frac{D}{P} \times 1000$, जहाँ D किसी समयावधि (प्रायः एक कैलेण्डर वर्ष) में किसी परिभाषित भौगोलिक क्षेत्र (अथवा किसी सामानिक समूह) में अंकित सभी कारणों से मौतों की कुल संख्या को इंगित करता है और P परिभाषित स्थान एवं समय में वर्ष.मध्य जनसंख्या है।

गुण-दोष : यह दर (CDR) सर्वाधिक प्रयुक्त एवं सर्वाधिक सरलता से आकलित किया एवं समझा जाने वाला मर्त्यता सूचकांक होती है। यह विचाराधीन समग्र जनसंख्या में अभिभावी मर्त्यता दशा की एक सामान्य तस्वीर प्रस्तुत करती है। तथापि, यह इस अवधारणा पर आधारित होती है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए मृत्यु का जोखिम समान होता है। इसी सीमा के कारण इस दर (CDR) के आधार पर दो देशों, दो क्षेत्रों अथवा दो समुदायों की तुलना करना वांछित नहीं होता। भारत में उक्त दर (CDR) वर्ष 1911–21 के दौरान 49 प्रतिवर्ष प्रति हज़ार के उच्च दर से वर्ष 2001 में 9, वर्ष 2006 में 8 और फिर वर्ष 2012 में घटकर 7 रह गई है।

आयु-विशिष्ट मृत्यु दर (ASDR) : मृत्यु हर आयु में होती है और मौत का जोखिम आयु के साथ बदलता रहता है। अतएव, आयु-विशिष्ट मृत्यु दरें (ASDR) आकलित कर विभिन्न आयु अथवा आयु समूहों) में जनसंख्या हेतु मृत्यु दरों का विश्लेषण करना आवश्यक होता है। इसे निम्नवत् आकलित किया जाता है ASDR = $\frac{nDx}{nPx} \times 1000$, जहाँ ${}_nD_x$ आयु-वर्ग x से $x+n-1$ में लोगों की दर्ज़ मृत्यु संख्या है और ${}_nP_x$ इस आयु. समूह का वर्ष.मध्य जनसंख्या आकार है। जब n=1 तो ASDR वार्षिक आयु.विशिष्ट मृत्यु दर हो जाती है और इस प्रकार दर्शाई जाती है – AASDR = $\frac{D_x}{P_x} \times 1000$.

गुण-दोष : उक्त दर (ASDR) दो जनसंख्या समूहों के बीच तुलना अपेक्षाकृत अधिक सार्थक रूप से करती है। यह बताती है कि क्या किसी विशिष्ट आयु-समूह में लोग कुल जनसंख्या के अनुसार ही मरने की समान संभावना रखते हैं। तथापि, आयु. विशिष्ट मृत्यु दर का आकलन तब तक मुश्किल होता है जब तक हमें मृतक की आयु सही-सही न पता हो। त्रुटियों की नितांत संभावना होती है।

शिशु मर्त्यता दर : बच्चों के समक्ष वयस्कों की तुलना में मर्त्यता का खतरा अधिक देखा जाता है, विशेषकर जीवन के प्रथम वर्ष में। शिशुओं की स्वास्थ्य प्रस्थिति (यथा, उनकी जो 12 माह से कम आयु के हैं) किसी क्षेत्र में उपलब्ध स्वास्थ्य परिचर्या एवं चिकित्सा सुविधाओं के स्तर का एक महत्त्वपूर्ण संकेतक होती है। शिशु मर्त्यता पर (IMR) को किसी क्षेत्र में किसी भी वर्ष में 'प्रति हज़ार जीवित जन्म' एक वर्ष से कम आयु के मरने वाले शिशुओं की संख्या के रूप में परिभाषित की जाती है। यथा,

IMR $= \frac{{}_1D_0}{{}_1B_0} \times 1000$ जहाँ ${}_1D_0$ का अर्थ है – 1 वर्ष से कम आयु (< 1 वर्ष) की शिशु मृत्यु संख्या तथा ${}_1B_0$ का अर्थ है– उसी वर्ष एवं क्षेत्र में जीवित जन्मों की संख्या। भारत में, उक्त दर (IMR) वर्ष 1971 में लगभग 129 थी। वर्ष 2006 में यह घटकर 57 और वर्ष 2012 में और घटकर मात्र 42 रह गई है। यह प्रत्येक राज्य में भिन्न होती है। वर्ष 2012 में निम्न छोर पर रहे केरल (12), मणिपुर (10) और गोवा (10) तथा ऊपर के छोर पर रहे, मध्य प्रदेश (56), असम (55), ओडिशा (53) तथा उत्तर प्रदेश (53)।

जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा – यह किसी नवजात शिशु के उन वर्षों की औसत संख्या है जिनमें उससे वर्तमान मर्त्यता दशाओं में जीवित रहने की प्रत्याशा की जाती है। जीवन की प्रत्याशा किसी भी आयु में आकलित की जा सकती है। उदाहरण के लिए, आयु पाँच में जीवन की प्रत्याशा उन वर्षों की औसत संख्या होगी जिनमें आज किसी 5 वर्षीय बच्चे के जीवित रहने की आशा की जाती है। भारत में जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा वर्ष 1951-61 की अवधि में 41 वर्ष से बढ़कर वर्ष 1981-85 में 56 वर्ष हो गई और आगे बढ़कर 1992-96 में 61 वर्ष एवं वर्ष 2006-10 में 66 वर्ष हो गई। भारत के प्रमुख राज्यों में यह (वर्ष 2006-10 में) केरल में उच्चतम (74) से असम में निम्नतम (62) तक भिन्न-भिन्न स्तरों पर रही है।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपने उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) 'जनसंख्या घनत्व' कैसे ज्ञात किया जाता है? भारत का वर्तमान जनसंख्या घनत्व क्या है और इसकी तुलना अन्य देशों के जनसंख्या घनत्व से किस प्रकार की जाती है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में राज्यों के बीच जनसंख्या घनत्व (DoP) किस प्रकार वितरित है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) अशोधित जन्म दर (CBR) को परिभाषित करें। भारत में इसका क्या रुझान रहा है? भारत की इस दर (CBR) की तुलना अन्य देशों की इस दर से कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) सामान्य प्रजनन दर (GFR) अशोधित जन्म दर (CBR) से किस प्रकार श्रेष्ठ है? इसके बावजूद प्रथम (GFR) की क्या सीमा है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5) कुल प्रजनन दर (TFR) किस प्रकार आकलित की जाती है? यह अन्य सभी प्रजनन दरों से किस प्रकार श्रेष्ठ है? 'पुनर्स्थापन स्तरीय प्रजनन' का क्या महत्त्व है?

.....

.....

.....

.....

.....

6) शिशु मर्त्यता दर (IMR) को परिभाषित करें। इसका क्या महत्त्व है?

.....

.....

.....

.....

5.4 जनांकिकीय संक्रमण

जनांकिकीय संक्रमण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनेक देश उच्च जन्म एवं मृत्यु दरों की स्थिति से दोनों ही निम्न दरों की ओर अग्रसर होते हैं। अल्प-विकसित देश (LDCs) विशिष्ट रूप से उच्च जन्म एवं मृत्यु दरें दर्शाते हैं क्योंकि मंथर गति से बढ़ते विकास के साथ, मृत्यु दर में जन्म दर की अपेक्षा ज़ल्दी गिरने की प्रवृत्ति आ जाती है जो तीव्र जनसंख्या वृद्धि में परिणत होती है। उन्नत देश निम्न जन्म एवं मृत्यु दरें और स्वाभाविक वृद्धि की एक निम्न अथवा ऋणात्मक दर भी दिखा सकते हैं। जनांकिकीय संक्रमण का सिद्धांत पश्चिमी देशों के वास्तविक जनांकिकीय अनुभव पर आधारित है। सी.पी.ब्लैकर (1945) ने जनांकिकीय संक्रमण की पाँच विशिष्ट अवस्थाएँ

पहचानीं, जो कि निम्नवत् हैं –

1) उच्च अचल अवस्था, जो कि उच्च जन्म दरों एवं उच्च मृत्यु दरों से अभिलक्षित होती है।

2) आरंभिक विस्तारण अवस्था, जो कि घटती मर्त्यता के साथ, कुछ समय के विलंब के साथ गिरती जन्म दरों में अभिलक्षित होती है।

3) परवर्ती विस्तारण अवस्था, जो कि गिरती जन्म दरों परंतु तेज़ी से घटती मर्त्यता से अभिलक्षित होती है।

4) निम्न अचल अवस्था, जनसंख्या की वह अवस्था जो समान रूप से निम्न मर्त्यता द्वारा संतुलित निम्न जन्म दरों से अभिलक्षित होती है।

5) निम्न मर्त्यता किंतु जन्मों से अधिक मौतों वाली जनसंख्या की ह्रासमान अवस्था।

वर्ष 1901-2011 की अवधि में भारत के अशोधित जन्म दर (CBR) एवं अशोधित मृत्यु दर (CDR) हेतु आँकड़े तालिका 5.1 में दिए गए हैं। ये आँकड़े दर्शाते हैं कि भारत में वर्ष 1931 से ही मृत्यु दर में तेज़ी से गिरावट देखी जाती रही है। दूसरी ओर, जन्म दर वर्ष 1901 से 1951 की अवधि में बहुत ऊँची बनी रही। यह, इसीलिए, जनसंख्या की 'आरंभिक विस्तारण अवस्था' थी; यथा, भारत में जनांकिकीय संक्रमण की दूसरी अवस्था। वर्ष 1981 से जन्म दर और मृत्यु दर, दोनों तेज़ी से गिरती रही हैं जो यह दर्शाता है कि भारत अब जनांकिकीय संक्रमण की 'परवर्ती विस्तारण अवस्था' में है। वर्ष 2010-15 में, विश्व-स्तर पर, 83 देश पुनर्स्थापन स्तरीय प्रजनन शक्ति से नीचे अर्थात् जनसंख्या की ऋणात्मक स्वाभाविक वृद्धि दर पर होने का अनुभव कर रहे थे। इस प्रकार, अंतःप्रवसन सम्मिलित करने के बावजूद, जापान (– 0.1), स्पेन (– 0.2), ग्रीस (– 0.4), रोमानिया (–0.8), लियुआनिया (–1.6), आदि देशों ने जनसंख्या की ऋणात्मक औसत वार्षिक वृद्धि दर दर्ज़ की है। यह दर्शाता है कि उनके जनांकिकीय संक्रमण की वर्तमान अवस्था पाँचवीं अवस्था कही जाएगी। कुछ प्रमुख जनांकिकीय अभिलक्षण, जिनमें अर्थव्यवस्थाओं को जनांकिकीय संक्रमण की प्रक्रिया के दौरान महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का अनुभव होगा, निम्नवत् हैं– (i) शहरीकरण; (ii) बदलता लिंगानुपात; (iii) जनसंख्या पिरामिड की संरचना; और (iv) निर्भरता अनुपात।

तालिका 5.1 : भारत में CBR व CDR – 1901 से 2011

वर्ष	CBR	CDR
1901	46	44
1911	49	43
1921	48	47
1931	46	36
1941	45	31
1951	40	27
1961	41	23
1971	41	19

1981	37	15
1991	33	11
2001	25	9
2011	22	7

स्रोत : स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण रिपोर्ट, 2013

5.4.1 शहरीकरण

शहरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे समाज पहले से अधिक नगरीय हो जाते हैं। इसका अर्थ ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर जनसंख्या विचलन होता है। तद्नुसार, यह एक ऐसा प्रसंग है जिसमें शहरी जनसंख्या की वृद्धि दर ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि दर से अधिक होती है। शहरीकरण की कोटि मापने के दो सरल मापदंड निम्नवत् हैं–

i) शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या का प्रतिशत (PU) :

$$PU = \frac{\text{शहरी जनसंख्या का आकार}}{\text{कुल जनसंख्या का आकार}} \times 100$$

PU का मान जितना अधिक होगा, शहरीकरण की कोटि उतनी ही उच्च होगी।

ii) शहरी-ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात (UR) :

$$UR = \frac{\text{शहरी जनसंख्या का आकार}}{\text{ग्रामीण जनसंख्या का आकार}} \times 100$$

UR अनुपात का मान जितना अधिक होगा, शहरीकरण की कोटि उतनी ही उच्च होगी।

भारत में शहरी जनसंख्या (PU) का अंश वर्ष 1901 में लगभग 11 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 1951 में लगभग 17 प्रतिशत और फिर वर्ष 2011 में बढ़कर 31 प्रतिशत हो गया। इस अवधि में भारत में शहरीकरण के रुझान में क्रमिक वृद्धि देखी गई। शहरी-ग्रामीण अनुपात (UR), दूसरी ओर, वर्ष 1951 में 21 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2011 में 45 प्रतिशत हो गया। शहरीकरण की दर, बहरहाल, राज्यों के बीच असमान ही रही है। उदाहरण के लिए, दिल्ली का राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (NCT) सर्वाधिक शहरीकृत है, जहाँ उसकी जनसंख्या का लगभग 98 प्रतिशत भाग शहरी क्षेत्रों में ही रहता है। गोवा राज्यों के बीच सर्वाधिक शहरीकृत है, जहाँ उसकी जनसंख्या का 62 प्रतिशत भाग रहता है। अल्पतम शहरीकृत राज्य हैं– हिमाचल प्रदेश (10 प्रतिशत) तथा बिहार (11 प्रतिशत)। परंतु जनगणना वर्गीकरण एक स्तर विशेष से ऊपर जनसंख्या वाले क्षेत्रों को ही शहरी क्षेत्र मानता है। तद्नुसार, हर जनगणना में कुछ क्षेत्रों को 'शहरी' में पुनवर्गीकृत किए जाने की गुंजाइश होती है। हालाँकि उन क्षेत्रों में रहने वाले लोग उसी स्थान पर रह रहे होते हैं। फिर भी, शहरीकरण को लाभकारी माना जाता है, जिसके कारण हैं– अपेक्षाकृत अधिक आय अर्जित करने के बेहतर अवसर, बेहतर आधारित संरचना, तथा आय, सामाजिक समस्याओं के प्रति लोगों को बेहतर जागरूकता एवं प्रत्युत्तर। शहरीकरण, इसीलिए, आधुनिकीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन में योगदान देता है, जहाँ परवर्ती निम्नतर जन्मदर, निम्नतर मृत्युदर, निम्नतर शिशु मर्त्यता दर तथा निम्नतर प्रजनन दरों के माध्यम से होता है। यह सब प्रमुखतः शिक्षा

के उच्चतर स्तरों एवं स्वास्थ्य परिचर्या सुविधाओं के कारण होता है, जो कि ग्रामीण क्षेत्रों की बाजय शहरी क्षेत्रों में काफ़ी बेहतर है।

भारत में शहरीकरण के प्रतिरूप को संसाधन आधार एवं सुख-सुविधाओं के पर्याप्त विस्तार के बिना ही बड़े शहरों में जनसंख्या के निरंतर संकेंद्रण से पहचान जाता है। परिणामतः, इससे अनेक क्षेत्रों में समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं, जैसे कि आवास, परिवहन, जलापूर्ति एवं स्वच्छता, जलवायु एवं ध्वनि प्रदूषण, सामाजिक अवसंरचना (विद्यालय, अस्पताल आदि); शहरी दारिद्रय एवं बेरोज़गारी तथा गंदी बस्तियों की संख्या में वृद्धि आदि।

5.4.2 लिंग अनुपात

जनसंख्या का स्त्री-पुरुष संयोजन लिंग अनुपात द्वारा मापा जाता है, जिसे स्त्री संख्या प्रति एक हज़ार पुरुष के रूप में परिभाषित किया जाता है। देखा गया है कि विकसित देशों में स्त्री संख्या पुरुष संख्या से अधिक होती है। भारत का लिंगानुपात, बहरहाल, दर्शाता है कि इस जनांकिकीय अभिलक्षण के जिहाज से हमारा समाज 'पुरुषवत्' है। भारत में लिंगानुपात वर्ष 1901 में 972 से घटकर वर्ष 2001 में 933 रह गया, जो कि वर्ष 2011 में किंचित् वृद्धि के बाद 943 हो गया है। यह राज्य स्तर पर काफी भिन्नता दर्शाता है : केरल में 1084 से हरियाणा में 879 तथा केंद्रशासित प्रदेशों में, पांडिचेरी में 1037 से दमन एवं दीव में 618 (वर्ष 2011 की जनसंख्या के अनुसार)। भारत में लिंगानुपात का ह्रासमान रुझान अनेक कारकों की वजह से है: उच्च मातृ मर्त्यता दर (MMR), बालिकाओं के बीच उच्च शिशु मर्त्यता दर (IMR), बालिकाओं के बीच उच्च बाल मर्त्यता दर, माता.पिता के बीच विद्यमान सशक्त 'पुत्र' अधिमानता, नारी-निरक्षता व निम्न शिक्षा-स्तर, अवैध बालिका शिशु-हत्या एवं बालिका भ्रूण-हत्या, आदि। भारत में हाल के वर्षों में इन मसलों को हल करने के लिए अनेक कदम उठाए गए हैं, जैसे, बालिकाओं की शिक्षा पर ज़ोर, नारी सशक्तीकरण, महिलाओं के विरुद्ध घरेलू हिंसा रोकने हेतु कानून, तथा प्रसव-पूर्व लिंग-निर्धारण प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल पर रोक के माध्यम से लैंगिक समानता को प्रोत्साहित करना। इस संदर्भ में, की गई नवीनतम पहल, यथा 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' उल्लेखनीय है।

5.4.3 जनसंख्या पिरामिड

जनसंख्या पिरामिड अथवा आयु-लिंग पिरामिड जनसंख्या के आयु-लिंग वितरण को आरेखणीय रूप से प्रस्तुत करने का एक परिष्कृत एवं उपयोगी तरीका है। किसी भी पिरामिड में उसके दोनों पक्षों पर अवस्थित दो साधारण बारंबारता-चित्र होते हैं। पिरामिड आरेखन के नियम आमतौर पर बारंबारता चित्र अंकित करने के नियमों जैसे ही होते हैं, परंतु पूर्ववर्ती कुछ परिपाटियाँ एवं विशेष अभिलक्षण दर्शाते हैं जो कि निम्नवत् हैं–

प्रथम, पिरामिड सदैव बाईं ओर पुरुष जनसंख्या और दाईं ओर स्त्री जनसंख्या दर्शाते हुए आरेखित किए जाते हैं। अल्पवयस्क सदा तल पर होते हैं और वृद्ध शीर्ष पर। परिपाटी के अनुसार, एक वर्षीय अथवा 5 वर्षीय आयु-समूहों का प्रयोग किया जाता है, हालाँकि अन्य समूहन भी संभव है।

द्वितीय, अंतिम मुक्तांत आयु-समूह का सामान्यतः विलोप कर दिया जाता है, परंतु कुछ उदाहरणों में इसे दर्शाया जाता है।

तृतीय, शीर्ष पैमाना आयु-समूह दर्शाता है और क्षैतिज पैमाना जनसंख्या के प्रतिशत प्रतिशतताओं को आधार के रूप में संयोजित करने में दोनों लिंगों की कुल जनसंख्या का प्रयोग होता है।

चौथे, क्षैतिज पैमाना पिरामिड के दोनों पक्षों के लिए एक रूप ही होना चाहिए। शीर्ष पैमाना भी बारंबारता-चित्र आरेखित करते समय दोनों पक्षों के लिए एकसमान ही होना चाहिए।

वर्ष 2001, 2016 एवं 2026 (परिकल्पित) हेतु भारत के जनसंख्या पिरामिड चित्र 5.1 में दर्शाए गए हैं। ये दर्शाते हैं कि जनसंख्या पिरामिड की आकृति क्रमिक रूप से बदलती रही है। वर्ष 2001 में इसका वर्ष 2016 व 2026 की तुलना में काफ़ी विस्तृत आधार था, जिसका अर्थ है कि वर्ष 2001 में, वर्ष 2016 व 2026 के मुकाबले, जनसंख्या में अल्पवयस्क बच्चों का वृहत्तर अनुपात था। उक्त अवधि में वृद्धजन का अनुपात भी बढ़ा है, जैसा कि जनसंख्या पिरामिड–2026 (परिकल्पित) के शीर्ष पर स्थित बारंबारता-चित्रों का किंचित बड़ा आकार दर्शाता है। परवर्ती जनसंख्या वृद्धता की वजह से है। विकसित देशों के पिरामिड आकार में लगभग आयताकार हैं, जो कि जनसंख्या में बच्चों का निम्नतर अनुपात तथा वयस्कों एवं वृद्धजनों का उच्चतर अनुपात दर्शाते हैं। भारत में कार्यरत आयु की, विशेषकर पिरामिड-2016 व पिरामिड 2026 में आयु-समूह 20–24 व 55–59 से आने वाली जनसंख्या का वृहत्तर अनुपात देश के जनांकिकीय लाभांश के दौर में प्रवेश की ओर इंगित करता है।

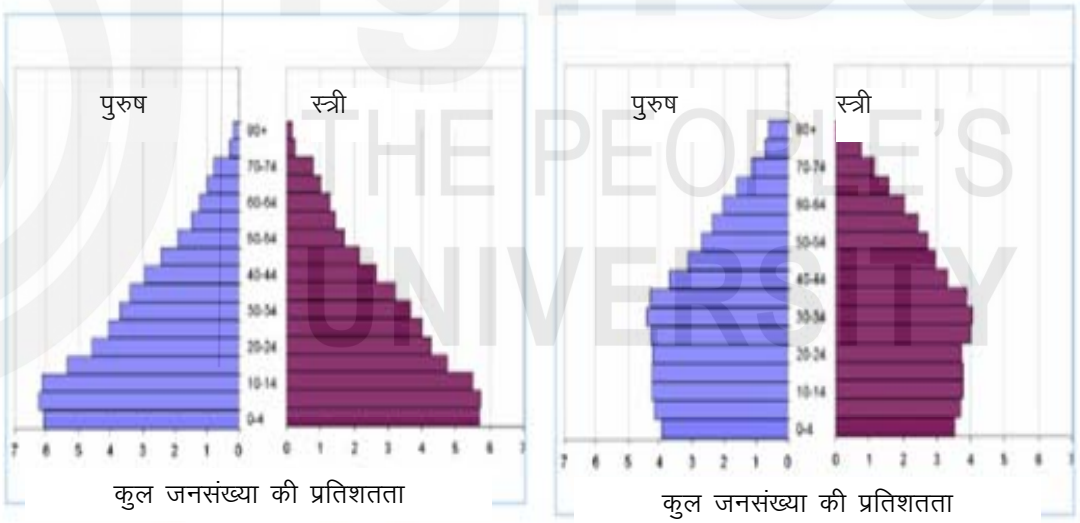

चित्र 5.1 : भारत के जनसंख्या पिरामिड.2001, 2016 व 2026

चित्र 2: परिकल्पित जनसंख्या पिरामिड : भारत.2001

चित्र 3 : परिकल्पित जनसंख्या पिरामिड : भारत.2026

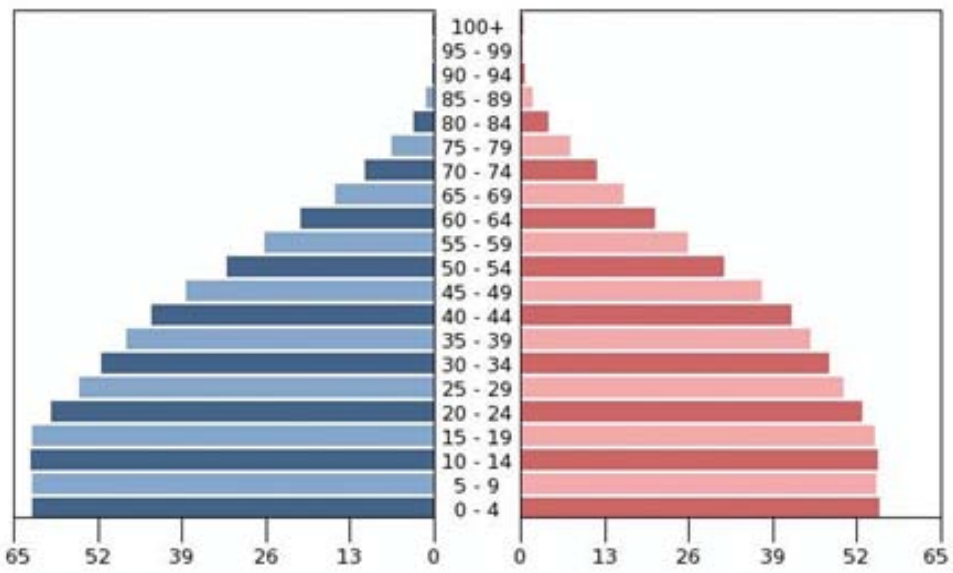

जनसंख्या (दस लाख में) आयु.समूह जनसंख्या (दस लाख में)

स्रोत : इंटरनेट, http://www.populationpyramid.net/India/2015

5.4.2 निर्भरता अनुपात

प्रथानुसार, आयु के आँकड़ों को पाँच-वर्षीय आयु-समूहों में वर्गीकृत किया जाता है; यथा, 0-4, 5-9, 10-14, 15-19, 20-24 वर्ष इत्यादि। आयु-समूहवार जनसंख्या की ऐसी प्रस्तुति अनेक प्रकार के विश्लेषणात्मक उद्देश्यों हेतु उपयोगी होती है। प्रायः, जनसंख्या संबंधी आँकड़ों को कुछ विशिष्ट आयु-समूहों हेतु मिला दिया जाता है ताकि संभावित श्रमबल, आर्थिक रूप से सक्रिय जनसंख्या आदि के विषय में अनुमान किया जा सके, जैसा कि नीचे दर्शाया गया है।

तालिका 5.2 : आयु-समूह द्वारा जनसंख्या का वर्गीकरण

आयु-समूह	वर्गीकरण
0—14	बच्चे
15—25	अल्पवयस्क
25—59	आर्थिक रूप से उत्पादनशील
60—79	वृद्धजन
80^{+}	वयोवृद्ध

जनसंख्या का आयु-समूहवार वितरण देश एवं क्षेत्र द्वारा जनसंख्या के बाल, अल्पवयस्क, आर्थिक रूप से उत्पादनशील, वृद्धजन एवं वयोवृद्ध जन-समूहों के बीच जनसंख्या का आकार आकलित करने में सहायक होती है। फिर विकास के विभिन्न संकेतक आकलित किए जा सकते हैं, जिनमें 'निर्भरता अनुपात' विकास का एक महत्त्वपूर्ण संकेतक है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की मानव विकास रिपोर्ट, 2016 ने 'निर्भरता अनुपात' अल्प-वयस्कावस्था जनसंख्या एवं वृद्धावस्था जनसंख्या हेतु अलग. अलग परिभाषित किया है, जो कि निम्नवत् है—

(क) अल्प-व्यवस्कावस्था निर्भरता अनुपात = अल्प-वयस्कावस्था (0–14) जनसंख्या / जनसंख्या आयु (15–64) × 100

(ख) वृद्धावस्था निर्भरता अनुपात = वृद्धावस्था (65 व ऊपर) जनसंख्या / जनसंख्या आयु (15–64) × 100

उपर्युक्त के अनुसार, वर्ष 2015 में भारत के लिए (क) और (ख) के मान क्रमशः 44 व 9 थे। अमेरिका जैसे किसी भी विकसित देश के लिए सदृश अनुपात 29 एवं 22 हैं। अल्प-विकसित देशों में निर्भरता अनुपात आमतौर पर ऊँचा होता है। भारत में, 'निर्भरता अनुपात' को 0–14 एवं 60+ दोनों जनसंख्या को लेकर निम्नवत् मापा जाता है–

(ग) निर्भरता अनुपात = [बाल जनसंख्या (0–14) जनसंख्या + वृद्ध जनसंख्या (60+), / जनसंख्या आयु (15–59)

बच्चों और बड़ों, यथा जो 0–14 व 60+ आयु-वर्ग में आते हैं, का ध्यान कार्यरत-आयु जनसंख्या 15–59 द्वारा रखे जाने की अपेक्षा की जाती है। ऊपर (ग) में निर्भरता अनुपात आश्रितों का दायित्व प्रति कार्यरत आयु-समूह जनसंख्या का सदस्य इंगित करता है। अनुकूल निर्भरता अनुपात बचत वर्धन का अभिमुख होता है। यह तभी संभव होगा जब कार्यरत-आयु जनसंख्या उत्पादनशीलता के साथ रोज़गार प्राप्त हो। भारत के लिए निर्भरता अनुपात वर्ष 1951 एवं 2001 के बीच 0-92 से 0-56 पर आ गया है।

5.5 जनसंख्या वृद्धता

21वीं सदी की प्रमुख वैश्विक जनांकिकीय घटनाओं में एक है– जनसंख्या वृद्धता। जनसंख्या वृद्धता जनांकिकीय परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें वृद्धजन का अंश अल्पवयस्कों के अंश में सहकालिक गिरावट के साथ कुल जनसंख्या में बढ़ता है। जनसंख्या वृद्धता की घटना के पीछे मुख्य कारक हैं– मर्त्यता दर में कमी, जिसके बाद जीवन-प्रत्याशा दर में वृद्धि के साथ-साथ प्रजनन दर में भी कमी आती है। वर्ष 1950 में, 60+ लोगों का वैश्विक अंश 20 करोड़ अथवा कुल जनसंख्या का 8 प्रतिशत था। यह प्रतिशतता वर्ष 2011 में 11 तक बढ़ी और वर्ष 2050 तक यह दोगुनी होकर 22 हो जाने का अनुमान है। अधिक विशिष्ट रूप से, वर्ष 2045 में, परिकल्पना की जाती है कि वृद्धजन संख्या समग्र विश्व में बच्चों की संख्या से अधिक हो जाएगी। भारत में भी 60+ लोगों का प्रतिशत स्थिर रूप से बढ़ रहा है। उदाहरण के लिए, कुल जनसंख्या के प्रति वृद्ध जनसंख्या का प्रतिशत वर्ष 1951 में 5.5 प्रतिशत था, परंतु वर्ष 2001 में यह बढ़कर लगभग 7.5 प्रतिशत और वर्ष 2011 में बढ़कर 8.6 प्रतिशत पर जा पहुँचा। परिकल्पना की जाती है वृद्धजन संख्या से वर्ष 2051 तक भारत में कुल जनसंख्या का लगभग 17 प्रतिशत हो जाएगी।

5.5.1 जनांकिकीय लाभांश

विश्व के कुछ भागों में हाल के तीव्र प्रजनन गिरावट ने आर्थिक एवं मानव विकास में तीव्रतर वृद्धि दर प्राप्त करने के अवसरों के नए वातायन खोल दिए हैं। प्रजनन में निरंतर कमी के कारण आयु-समूह 0–14 में बच्चों की संख्या निरंतर घटती जाएगी। कुछ समय पहले की उच्च प्रजनन दर वर्तमान कार्यबल की वृद्धि सुनिश्चित कर देती है और वर्तमान निम्न प्रजनन दर का अर्थ होगा– भविष्य में आश्रित बाल जनसंख्या का लघुतर आकार। जनसंख्या रुझान का यह अभिलक्षण ही 'जनांकिकीय वातायन अथवा लाभांश' है। अधिक विशिष्ट रूप से, वे लाभांश जो संभव होते हैं, निम्नवत् हैं–

(i) वृहत्तर आर्थिक गतिविधियों हेतु उच्चतर श्रमापूर्ति; (ii) महिलाओं के स्वास्थ्य, शिक्षा एवं कार्यबल में शामिल होने के अवसर के साथ कम बच्चे; (iii) वृहत्तर आय एवं वृहत्तर बचत के साथ श्रम योग्य आयु के वयस्कों का वृहत्तर आकार, यथा आर्थिक गतिविधियों हेतु बढ़ी पूँजी आपूर्ति; (iv) व्यष्टिक एवं समष्टिक दोनों स्तरों पर बच्चों पर कम निवेश अपेक्षित होगा क्योंकि देश में देखभाल किए जाने के लिए बच्चों की संख्या कम होगी; (v) वृहत्तर आय के कारण बेहतर मानव-विकास, उच्च शिक्षा में अधिक निवेश और महिलाओं एवं बच्चों के बेहतर स्वास्थ्य के लिए अधिक निवेश (चीन ने एक-बच्चा परिवार नियोजन का सहारा लेकर मानव-विकास सूचकांक में अपनी रैंकिंग सुधारी है); तथा (vi) प्रजनन पतन एवं श्रमयोग्य आयु के लोगों की जनसंख्या में वृद्धि के कारण, निर्भरता अनुपात घटेगा। निम्न निर्भरता अनुपात आर्थिक विकास में सहायक होता है।

विशिष्टतः, अवसर का यह वातायन अथवा जनांकिकीय लाभांश की उपलब्धता, देश के अपनी परिस्थितियों के आधार पर हुए, 30 से 40 वर्षों तक चलती है। भारत जनांकिकीय वातायन के बिंदु पर वर्ष 2011 में पहुँचा। पंद्रह वर्ष से कम आयु के नागरिकों का अनुपात अब भी 30 प्रतिशत है और जो 65 वर्ष या उससे ऊपर का आयु प्राप्त कर चुके हैं, 15 प्रतिशत से कम हैं। भारत में श्रम योग्य आयु की जनसंख्या का अंश बढ़ रहा है (वर्ष 2011 में लगभग 60.3 प्रतिशत)। दूसरी ओर, वर्ष 2011 में कार्य भागीदारी दर (WPR) 39.8 प्रतिशत पर नीची ही बनी रही। तत्काल उपाय, इसीलिए, आवश्यक हैं ताकि – (i) बेरोज़गारी एवं कम-रोज़गारी मिटाने हेतु यथेष्ट पैमाने पर रोज़गार अवसर पैदा किए जा सकें; (ii) स्व-रोज़गार के नए मार्गों का लाभ उठाने के लिए युवा-वर्ग के बीच कौशल विकास को अग्रता प्रदान की जा सके; तथा (iii) जनसंख्या के वृहत्तर भागों को लाभ उठाने में सक्षम करने व उसके द्वारा विकास प्रक्रिया में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए आधुनिक शैक्षणिक एवं प्रशिक्षण प्रणाली की पहुँच विस्तीर्ण की जा सके। तभी भारत 'जनांकिकीय लाभांश' से लाभ उठा सकेगा।

5.5.2 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (NPP)

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 (NPP 2000), परिवार नियोजन सेवाओं के लागू करने में स्वैच्छिक दृष्टिकोण की दिशा में सरकार की प्रतिबद्धता को दोहराती है। यह कुल प्रजनन दर (TFR) के लिहाज से निवल पुनर्स्थापन स्तर हासिल करने के लिए लोगों की प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक नीति प्राधार प्रदान करती है। इस नीति (NPP 2000) का तत्काल उद्देश्य है– गर्भ निरोध, स्वास्थ्य परिचर्या अवसंरचना संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करना तथा मूलभूत प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य रक्षा हेतु एकीकृत सेवाएँ सुलभ कराना। इसका मध्यावधि उद्देश्य अंतर्क्षेत्रीय संक्रियात्मक रणनीतियों के क्रियान्वयन के माध्यम से वर्ष 2010 तक उक्त दर (TFR) को पुनर्स्थापन स्तर पर लाना है। इसका (NPP 2000 का) दीर्घावधि उद्देश्य धारणीय आर्थिक विकास सुनिश्चित करने के लिए देश की आवश्यकताओं के अनुरूप वर्ष 2045 तक एक स्थिर जनसंख्या हासिल करना है। सरकार उक्त नीति (NPP 2000) के तत्काल उद्देश्यों के अंतर्गत पहले ही अनेक कदम उठा चुकी है और पहल कर चुकी है। परिणामतः यह दर (TFR) वर्ष 2002 में 3.0 से घटकर वर्ष 2002 में 3.0 से गिरकर वर्ष 2013 में 2.3 रह गई। नवीनतम उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार, 24 राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों ने वर्ष 2013 तक TFR =2.1 की प्रजनन दर का पुनर्स्थापन स्तर हासिल कर लिया है।

बोध प्रश्न 2 (दिए गए स्थान में अपने उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) शहरीकरण क्या है? इसे कैसे मापा जाता है? इन संकेतकों के अनुसार भारत की शहरीकरण प्रक्रिया में क्या रुझान देखा गया है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) जनसंख्या पिरामिड क्या दर्शाता है? यह विकासशील देशों और विकसित देशों के बीच कैसे भेद करता है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) कोई देश अपना 'जनाकिकीय लाभांश' के दौर में प्रवेश किया जाना कैसे दर्शाता है? इसक आर्थिक नियोजन हेतु क्या निहितार्थ होते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

5.6 सार-संक्षेप

आर्थिक नियोजन के लिए जनसंख्या जनांकिकीय अभिलक्षणों का आकलन आवश्यक होता है। जनसमुदाय के विभिन्न अंशों, जैसे अल्पायु बच्चे, प्रजनन आयु-समूह में स्त्रियाँ, आर्थिक रूप से सक्रिय श्रम बल तथा वृद्धजन, आमतौर पर सरकार से और खासतौर पर सामाजिक अवसंरचना से, विभिन्न प्रकार की समर्थन सेवाएँ चाहते हैं। परिवर्तनशील जनांकिकीय विवरण इस दृष्टिकोण से आर्थिक नियोजन हेतु आवश्यक होता है। इस प्रसंग में, इस इकाई में अनेक संकल्पनाओं से परिचय कराया गया है : यथा– जनसंख्या वृद्धि दर, प्रजनन एवं मर्त्यता दरें, जनांकिकीय संक्रमण, जनसंख्या वृद्धता, आदि। भारत 'जनांकिकीय लाभांश' के अपने दौर में प्रवेश कर चुका है, परंतु इस अवसर के वातायन का लाभ उठाने के लिए अनेक सुविधाओं एवं सेवाओं का अब भी अभाव है। इनमें शामिल हैं, अपने श्रमबल के समर्थनार्थ पर्याप्त रोज़गार अवसर तथा अपनी पण्यता बढ़ाते हेतु कौशल विकास कार्यक्रम।

5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Cassen, R.H. (1958). India : Population, Economy, Society, Chapter 4, The Macmillan Co. of India Ltd., Delhi.

2) Colin Newell(1994). Methods and Models in Demography, John Willey and Sons, England.

3) Human Development Report, (2016). UNDP, New York, NY 10015.

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) यह 'प्रतिवर्ग किमी. भूमि' पर 'जनसंख्या' के अनुपात के रूप में मापा जाता है। वर्ष 2016 हेतु 445। यह चीन का 147, अमेरिका का 35 और ऑस्ट्रेलिया का 7 है।

2) बिहार, पश्चिम बंगाल व उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में यह ऊँचा है (जहाँ जनसंख्या घनत्व 829 से 1106 तक पाया जाता है) तथा हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, मिज़ोरम व अरुणाचल प्रदेश जैसे राज्यों में निम्न है (जहाँ यह 17 से 23 तक पाया जाता है)।

3) इसे किसी क्षेत्र में वर्ष मध्यय जनसंख्या के प्रति हजार स्तर अनुसार जीवित जन्मों की संख्या के रूप में परिभाषित किया जाता है। यह वर्ष 1951 में 40 से वर्ष 2011 में 22 पर गिर चुका है। यह अमेरिका में 14, चीन में 12 और जापान में 9 है।

4) अशोधित जन्म दर से भिन्न, हर में यह केवल जननक्षम जनसंख्या में महिलाओं पर विचार करता है। परंतु यह भिन्न-भिन्न जनन क्षमता के साथ विभिन्न जलवायवीय क्षेत्रों से आने वाली महिलाओं के बीच कोई भेदभाव नहीं करती।

5) कुल प्रजनन दर इस प्रकार आकलित की जाती है– TFR = $\frac{5 \text{ x } \sum_{15}^{49} \text{ASFR}}{1000}$. गुणक 5 तब प्रयोज्य होता है जब विचाराधीन आयु-समूह 5 वर्षीय अंतरालों पर हों। यह प्रत्येक आयु-समूह में समग्र प्रजनन विस्तार को विचारार्थ होता है। पुनर्स्थापन स्तरीय प्रजनन का अर्थ है कि 'जनसंख्या में बच्चों की संख्या माता-पिताओं का स्थान लेने को पर्याप्त है' जो कि जनसंख्या में स्थिरता सुनिश्चित करता है। आमतौर पर, TFR = 2.1 को पुनर्स्थापन स्तरीय प्रजनन माना जाता है।

6) इसे इस रूप में परिभाषित किया जाता है : IMR = $\frac{1D_0}{1B_0}$ × 10001 यह किसी क्षेत्र में उपलब्ध स्वास्थ्य रक्षा एवं चिकित्सा सुविधाओं का स्तर इंगित करता है।

बोध प्रश्न 2

1) यह जनसंख्या का ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर विचलन दर्शाता है। यह PU अर्थात् शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या का प्रतिशत तथा UR अर्थात् शहरी एवं ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात द्वारा मापा जाता है। भारत में PU के अनुसार शहरीकरण वर्ष 1951–2011 के दौरान 15 प्रतिशत से दोगुना होकर 31 प्रतिशत

हो गया। UR के अनुसार, यह वर्ष 1951–2011 के दौरान 21 से 45 प्रतिशत तक बढ़ा है।

2) यह आयु-समूहों द्वारा प्रतिशत में जनसंख्या का वितरण दर्शाता है, जहाँ एक विस्तृत आधार अधिक बच्चे दर्शाता है जो कि प्रायः विकासशील देशों में होता है। विकसित देशों में यह आकृति में आयताकार होती है, जो यह दर्शाती है कि वृद्ध जनसंख्या उच्चतर है।

3) यह श्रम योग्य समूह (20–59) हेतु जनसंख्या पिरामिड का भाग अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत होने से इंगित होता है। यह आर्थिक नियोजन हेतु आह्वान करता है ताकि उपलब्ध्य रोज़गार बढ़ाया जा सके और साथ ही, बाज़ार की कौशल संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके, जिससे वहाँ के विसंगतिपूर्ण परिणामों से बचा जा सकें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 6 शिक्षा क्षेत्र*

संरचना

6.0 उद्देश्य

6.1 विषय प्रवेश

6.2 मानव पूँजी और मानव विकास : विभेद

6.3 भारत में शिक्षा क्षेत्र

6.3.1 प्राथमिक शिक्षा

6.3.2 माध्यमिक शिक्षा

6.33 उच्च शिक्षा

6.4 शैक्षणिक उपलब्धि/परिणाम

6.4.1 स्त्री-पुरुष विषमता

6.4.2 गुणवत्ता

6.5 शिक्षा का वित्तीयन

6.5.1 राज्य बनाम बाज़ार निधिकरण हेतु तर्क

6.5.2 शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय

6.5.3 वित्तीयन के वैकल्पिक स्रोत

6.6 सार-संक्षेप

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- 'मानव पूँजी' और 'मानव विकास' शब्दों के बीच भेद कर सकें;
- भारत में शिक्षा क्षेत्र में संवृद्धि का वर्णन कर सकें;
- शिक्षा क्षेत्र में विस्तार की पर्याप्तता के परिमाणात्मक एवं गुणात्मक आयामों के विश्लेषण कर सकें;
- स्त्री-पुरुष समता एवं गुणवत्ता आयामों के संदर्भ में शिक्षा क्षेत्र की कार्य-निष्पत्ति की समालोचना कर सकें;
- अन्य देशों से तुलनात्मक रूप में भारत के शिक्षा क्षेत्र पर सार्वजनिक व्यय में प्रवृत्तियों की चर्चा कर सकें; और
- शिक्षा क्षेत्र का वित्त प्रबंध करने के वैकल्पिक स्रोतों की रूपरेखा के साथ शिक्षा के वित्त प्रबंधन में 'राज्य' बनाम 'बाज़ार' की भूमिका स्पष्ट कर सकें।

*प्रो. सेबक जाना, मिदनापुर विश्वविद्यालय

6.1 विषय प्रवेश

शिक्षा जिस पूँजी के निर्माण में योगदान देती है उसे 'मानव पूँजी' की संज्ञा दी जाती है। मानवीय पूँजी 'भौतिक पूँजी' से भिन्न होती है, परंतु वह परवर्ती की संपूरक भी है। भौतिक पूँजी आर्थिक संवृद्धि में सहायक होती है जो कि, बदले में, ऐसी परिस्थितियों को जन्म देती है जिनमें बेहतर शिक्षा सुविधाओं की माँग उठती है। इसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में मानव पूँजी निर्माण होता है। मानव पूँजी निर्माण, आर्थिक संवृद्धि को तेज़ करता है। इस प्रकार, विकास के ये सामाजिक पहलू नीति-निर्माताओं और राजनीतिक नेताओं दोनों को समान रूप से आकर्षित करते हैं, हालाँकि प्रत्येक के लिए उसके भिन्न-भिन्न कारण हैं। इस संदर्भ में, प्रस्तुत इकाई में हम सामाजिक क्षेत्र के विकास के दो विशिष्ट उपक्षेत्रों में से एक से संबंधित मुद्दों पर चर्चा करेंगे अर्थात् भारतीय अर्थव्यवस्था में शिक्षा क्षेत्र (दूसरा उपक्षेत्र स्वास्थ्य है)।

6.2 मानवीय पूँजी और मानव विकास : विभेद

मानवीय पूँजी को जनसमुदाय द्वारा धारण किए जाने वाली ज्ञान-राशि और उस ज्ञान को प्रभावशाली ढंग से प्रयोग करने की उसकी क्षमता के रूप में परिभाषित किया जाता है। मानवीय पूँजी में *इसीलिए* समस्त ज्ञान, प्रतिभाएँ, कौशल, योग्यताएँ, अनुभव, बुद्धि, प्रशिक्षण, निर्णय तथा वैयक्तिक रूप से एवं सामूहिक रूप से लब्ध प्रज्ञा आदि शामिल होते हैं, जिनका संचयी योग राष्ट्रों एवं संगठनों को अपने लक्ष्य हासिल करने हेतु उपलब्ध एक संपदा के रूप में निरूपित किया जाता है। 1950 के उत्तरार्ध तक अर्थशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक के रूप में मानीवय पूँजी में निवेश की भूमिका पर अधिक ध्यान नहीं दिया था। इस अवधारणा का जन्म दिसंबर, 1960 में अमेरिकन इकॉनोमिक एसोसिएशन को प्रो. थिओडोर डब्ल्यू. शुल्ज़ के अध्यक्षीय भाषण में देखा जा सकता है। शुल्ज़ (1961) द्वारा प्रतिपादित मानवीय पूँजी सिद्धांत ने मनुष्यों में शिक्षा को निवेश स्वरूप मानने और इसे आर्थिक संवृद्धि के एक महत्त्वपूर्ण स्रोत के रूप में जानने के लिए एक सशक्त आधार दिया। मानवीय पूँजी सिद्धांत के अनुसार, ''शिक्षा अर्थव्यवस्था के परंपरागत क्षेत्र और आधुनिक क्षेत्र, दोनों, द्वारा अपेक्षित ज्ञान प्रदान करके व कौशल अंतर्निवेशित करके अनगढ़ मनुष्यों को उत्पादनशील 'मानवीय पूँजी' बना देती है। इस प्रकार, वह लोगों को समाज के पहले से अधिक लाभकारी सदस्य बना देती है– न सिर्फ पण्य क्षेत्र में, बल्कि घरों में भी और साथ ही, पूरे समाज में भी। भारत समेत लगभग सभी देशों में उपलब्ध साक्ष्य ग़रीबी की रेखा से नीचे के लोगों के अनुपात और अनपढ़ लोगों के अनुपात के बीच महत्त्वपूर्ण सकारात्मक साह्चर्य स्थापित करते हैं।

मानव विकास, दूसरी ओर, लोगों के अधिकारों और अवसरों को परिवर्धित करने की ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जिससे उनके समग्र कल्याण में बढ़ोतरी होती है। मानव विकास जनसाधारण की असली आज़ादी की बात कहता है, जिससे कि वे तय कर सकें कि उन्हें क्या बनना है, क्या करना है और कैसे रहना है। मानव विकास की संकल्पना अर्थशास्त्री महबूब-उल-हक़ द्वारा विकसित की गई, जो इस अवधारणा पर आधारित है कि शिक्षा और स्वास्थ्य मानव क्षेम-कल्याण के अभिन्न अंग हैं क्योंकि जब लोगों के पास वांछित योग्यता और एक स्वस्थ शरीर होगा, तभी वे एक उत्तम और सार्थक जीवन जी सकेंगे। इस प्रकार, मानव विकास एक व्यापक

संकल्पना है जिसमें मनुष्यों को ही अपने आप में साध्य मानकर चला जाता है। मानव विकास तभी होता है जब किसी अर्थव्यवस्था में अधिकांश लोग शिक्षित और स्वस्थ हों।

6.3 भारत में शिक्षा क्षेत्र

सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति को सरल बनाने में शिक्षा की भूमिका को भली-भाँति पहचाना गया है। यह ऐसे अवसर पैदा करती है जिससे वैयक्तिक और सामूहिक दोनों ही क्षमताओं में वृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है। शिक्षा, अपने व्यापकतम अर्थ में, लोगों को लाभकारी रोज़गार अवसर सुलभ कराकर उन्हें विभिन्न प्रकार के कौशल एवं ज्ञान से संपन्न करने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आगत है। शिक्षा में सुधारों से न सिर्फ़ दक्षता बढ़ाए जाने की बल्कि जीवन की समग्र गुणवत्ता भी बढ़ाए जाने की अपेक्षा की जाती है। भारत में अनुसरण की जा रही वर्तमान संवृद्धि युक्ति द्रुत एवं समावेशी संवृद्धि हासिल करने के लिए एक प्रमुख साधन के रूप में शिक्षा को उच्चतम प्राथमिकता देती है। इसके दायरे में शिक्षा पिरामिड के सभी घटकों को समाविष्ट करते शिक्षा क्षेत्र को दृढ़ता प्रदान करने हेतु अभिकल्पित कार्यक्रम ये हैं : (i) प्राथमिक शिक्षा; (i) माध्यमिक शिक्षा; तथा (iii) उच्च शिक्षा।

6.3.1 प्राथमिक शिक्षा

प्राथमिक शिक्षा, यथा कक्षा I-VIII जिनमें प्राथमिक (I-V) और उच्चतर प्राथमिक (VI-VIII) स्तर होते हैं, शैक्षिक प्रणाली पिरामिड का आधार है और इसी पर हमारे सभी विकास कार्यक्रमों में ज़ोर दिया गया है। प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण (UEE) को सन् 1999 में सर्व शिक्षा अभियान (SSA) कार्यक्रम के अंगीकरण से काफ़ी विस्तार मिला है। यह योजना पाँच सिद्धांतों द्वारा निर्देशित रही है, यथा– (i) व्यापक सुलभता, (ii) व्यापक नामांकन, (iii) व्यापक धारण, (iv) व्यापक उपलब्धि, एवं (v) समता। इनके अलावा, उक्त अभियान (SSA) '6 से 14 वर्ष की आयु-वर्ग के सभी बच्चों' के लिए उत्तम गुणवत्ताकारी प्राथमिक शिक्षा सुनिश्चित करने को अवश्यकरणीय मानता है। इसको सुनिश्चित करने के लिए 86 वें संविधान संशोधन (2002) में नया अनुच्छेद (21-A) शामिल किया गया जो '6 से 14 वर्ष आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को एक मौलिक अधिकार के रूप में' प्रदान करता है। भारत में 'प्राथमिक एवं उच्चतर प्राथमिक' विद्यालयों की वृद्धि अवधि 1951-2015 के दौरान छह गुना (2 लाख से 13 लाख) रही। इन विद्यालयों में नामांकन (वर्ष 1951 में 2.2 करोड़ से वर्ष 2015 में 19.8 करोड़) नौ गुना बढ़ा है।

6.3.2 माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा के बीच एक सेतु का काम करती है। प्राथमिक शिक्षा की भाँति, माध्यमिक शिक्षा के भी दो भाग हैं, यथा माध्यमिक (जिसमें कक्षाएँ 9 और 10 आती हैं) तथा वरिष्ठ माध्यमिक (जिसमें कक्षाएँ 11 और 12 आती हैं)। चूँकि प्राथमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण एक स्वीकृत लक्ष्य बन गया है, इस स्वप्न को आगे माध्यमिक शिखा के सर्वव्यापीकरण की ओर ले जाना अनिवार्य हो गया है, जो कि अधिकांश विकसित देशों और नव-औद्योगीकृत पूर्व एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में काफ़ी हद तक हो भी चुका है। अब तक माध्यमिक शिक्षा का ख़ास ज़ोर 'समान स्कूल प्रणाली' को महत्त्व देते हुए सुलभता बढ़ाने और विषमताएँ घटाने पर ही रहा है, जिसमें किसी क्षेत्र विशेष में विद्यालयों के लिए पड़ोस में रह रहे निम्न-आय परिवारों से

विद्यार्थियों को लेना अनिवार्य होता है। शिक्षा को व्यावसायिक शिक्षा बनाए जाने को महत्त्व देते हुए पाठ्यचर्याओं के संशोधन पर भी विशेष आग्रह रहा है। सारतः शिक्षा को व्यावसायिक शिक्षा बनाए जाने का अर्थ है– रोज़गारोन्मुखी पाठ्यक्रम प्रदान किए जाने पर ध्यान देना, महत्त्व दिए जाने के अन्य क्षेत्र हैं– (i) मुक्त शिक्षा प्रणाली का विस्तार एवं विविधीकरण; (ii) अध्यापक प्रशिक्षण का पुनर्विन्यास, आदि। ये उद्देश्य अब तक अंशतः ही पूर्ण हुए हैं। माध्यमिक शिक्षा हेतु संस्थानों की संख्या वर्ष 2001 में 1.0 लाख से बढ़कर वर्ष 2015 में 2.0 लाख हो गई। इन संस्थानों में नामांकन वर्ष 2001 में 2.9 करोड़ से बढ़कर वर्ष 2015 में 6.2 करोड़ हो गया। तद्नुसार, इन संस्थानों की संख्या और उनमें नामांकन 2001.15 की अवधि में 2 गुना बढ़ा है।

6.3.3 उच्च शिक्षा

1950 व 1960 के दशकों में उच्च शिक्षा में किए गए निवेश ने स्वाधीन भारत में आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति और राजनीतिक लोकतंत्र के दृढ़ीकरण में महत्त्वपूर्ण रूप से योगदान देते हुए भारत को अनेक क्षेत्रों में सशक्त ज्ञान आधार प्रदान किया है। महाविद्यालयों की संख्या वर्ष 1951 में 1.0 लाख से बढ़कर वर्ष 2015 में 38 लाख हो गई, यथा 38 गुना वृद्धि। इसी प्रकार, विश्वविद्यालयों की संख्या वर्ष 1951 में 27 से बढ़कर वर्ष 2015 में 760 हो गई, यथा 28 गुना वृद्धि। इन 'महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों' में संयुक्त नामांकन वर्ष 1951 में 4.0 लाख से बढ़कर वर्ष 2015 में 3.42 करोड़ हो गया, यथा लगभग 86 गुना। तथापि, अब तक हुए विस्तार के बावजूद, वर्तमान व्यवस्था पर ऐसी कुशल मानव शक्ति की वांछित संख्या उपलब्ध कराने का दबाव बना ही हुआ है जो कि अर्थव्यवस्था की माँगों को पूरा करने में सहायक वांछित ज्ञान एवं तकनीकी कौशलों से संपन्न हो। अर्थव्यवस्था की त्वरित संवृद्धि ने पहले ही उच्च-गुणवत्ता वाली तकनीकी मानवशक्ति की कमी पैदा कर दी है। इसके अतिरिक्त, विकसित देशों से भिन्न, जहाँ युवा कार्यबल उच्चतर निर्भरता अनुपात के साथ तेज़ी से घट रहा है, भारत जनांकिकीय संक्रमण के दौर से गुज़र रहा है, जहाँ लगभग 30 प्रतिशत जनसंख्या 35 वर्ष से नीचे आयु वालों की है। परंतु यह लाभ आर्थिक लाभ के रूप में तभी साकार किया जा सकता है जबकि युवाओं के लिए अवसर मूल विज्ञान. शास्त्रों, अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी, स्वास्थ्य परिचर्या, वास्तुकला, प्रबंधन, आदि विभिन्न क्षेत्रों में विस्तीर्ण मान एवं वैविध्य पर व्याप्त हों। ऐसा तभी संभव होगा जब द्रुत-विस्तार उच्चतर, तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा क्षेत्रों में एक लंबे समय से विलंबित सुधारों के साथ आरंभ किया जाएगा।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें)।

1) मानवीय पूँजी को किस प्रकार परिभाषित किया जाता है? मानवीय पूँजी को पहचान दिलवाने का श्रेय किस अर्थशास्त्री को दिया जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) मानव विकास का विचार मानव पूँजी से किस प्रकार भिन्न है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) वे पाँच सिद्धांत कौन.से हैं जिनसे सर्वशिक्षा अभियान (SSA) नामक कार्यक्रम नियंत्रित होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

4) भारत में 'प्राथमिक शिक्षा' के संबंध में विस्तार का क्या महत्त्व रहा है?

.....

.....

.....

.....

.....

5) देश में 'माध्यमिक शिक्षा' व्यवस्था में 'समान स्कूल प्रणाली' का एक महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण क्या रहा है?

.....

.....

.....

.....

.....

6) भारत में 'उच्च शिक्षा' के संबंध में विस्तार-प्रसार का कितना विस्तार हुआ है?

.....

.....

.....

.....

.....

7) क्या आप मानेंगे कि शिक्षा क्षेत्र में विस्तार-प्रसार अर्थव्यवस्था की अपेक्षाओं के अनुरूप रहा है? क्यों?

.....

.....

.....

.....

.....

6.4 शैक्षणिक उपलब्धि/परिणाम

शिक्षा एक मूलभूत आवश्यकता है जिसे अब शिक्षा का अधिकार संबंधी अधिनियम के माध्यम से एक मौलिक अधिकार भी बना दिया गया है : बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम अर्थात् शिक्षा का अधिकार– RTE)। जबकि उच्च शिक्षा आवश्यक है, प्राथमिक शिक्षा उस आधार की भूमिका निभाती है जिस पर आगे की पढ़ाई की अधिरचना की जा सकती है। विद्यालयों में नामांकन हाल के वर्षों में यथेष्ट रूप से बढ़ा है, परंतु पठन, लेखन एवं अंकगणितीय संक्रियाओं संबंधी मूल संकल्पनाओं में विद्यार्थियों का कार्य-प्रदर्शन निम्न ही रहा है। इसके अलावा, शिक्षा सुलभता और शिक्षा समापन दोनों में ही व्यावहारिक लिंग भेद आधारित पूर्वाग्रह चिंता का मुख्य कारण रहा है। इनके कारण ही, मौलिक शिक्षा व्यवस्था के घटिया प्रदर्शन में भी व्यापक क्षेत्रीय भिन्नताएँ विद्यमान हैं। कुछ कारण, जैसे– (i) गरीबी; (ii) व्यापक बाल-श्रम बाज़ार की विद्यमानता; (iii) विद्यालयी शिक्षा के बाद निश्चित रोज़गार का अभाव; तथा (iv) अवसंरचनात्मक समस्याएँ, भारत में प्राथमिक शिक्षा प्रणाली को अभिशप्त करती बुराइयों के लिए ज़िम्मेदार मानी जाती हैं। स्कूलों में उपस्थिति के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना, विद्यालयी प्रक्रिया को बच्चों के लिए आकर्षक बनाना, मिडिल और हाई स्कूल पाठ्यचर्या को व्यावसायिक एवं रोज़गारोन्मुखी पाठ्यक्रमों के अनुरूप बनाना तथा विद्यालयों में बेहतर अवसंरचना उपलब्ध कराना– ये कुछ ऐसी नीतियाँ हैं जिन पर परिदृश्य को सुधारने के लिए ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

साक्षरता दर को शैक्षणिक लब्धि में विषमता उज़ागर करने के मूल संसूचकों में एक माना जाता है। इस संबंध में शहरी-ग्रामीण अंतर यथेष्ट रूप से कम हुआ है (यथा, वर्ष 1961 में 34 प्रतिशत से वर्ष 2011 में 16 प्रतिशत)। इसके बावजूद, ग्रामीण भारत में प्रगति शहरी साक्षरता स्तरों तक पहुँचने के लिए पर्याप्त नहीं रही है (यथा, वर्ष 2011 में ग्रामीण भारत हेतु 69 प्रतिशत के मुकाबले शहरी साक्षरता दर 85 प्रतिशत रही)। राज्यवार उपलब्धि दर्शाता है कि समग्र साक्षरता में जहाँ केरल (94 प्रतिशत) (मिज़ोरम, लक्षद्वीप एवं त्रिपुरा के साथ) शीर्ष पर बना हुआ है, वहीं बिहार समग्र साक्षरता में सबसे नीचे (61.8 प्रतिशत) है। लक्षद्वीप और केरल में ग्रामीण-शहरी विषमता निम्नतम रही है, जहाँ दोनों की ही गिनती उच्च प्रदर्शन वाले राज्यों में हुई है। उपलब्धि में विषमताएँ कई अन्य मोर्चों पर भी बनी रही हैं, जिनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्त्री-पुरुष विषमता एवं गुणवत्ता के लिहाज से हैं।

6.4.1 स्त्री-पुरुष विषमता

दो ऐसे सूचक हैं जो शिक्षा में स्त्री-पुरुष विषमता आधारित कार्य-प्रदर्शन को उजागर करते हैं। ये हैं– (i) सकल नामांकन अनुपात (GER); और (ii) स्त्री-पुरुष समता

सूचकांक। सही-सही आयु वर्षों द्वारा नामांकन पर आँकड़े उपलब्ध न होने पर 'निर्बल नामांकन अनुपात' के स्थान पर प्रयुक्त उक्त अनुपात (GER) शिक्षा में भागीदारी का सामान्य स्तर उज़ागर करने के लिए प्रयोग किया जाता है। यह अनुपात (GER) शिक्षा के स्तर द्वारा ही परिभाषित किया जाता है। उदाहरण के लिए, प्राथमिक शिक्षा के लिए, यह अनुपात (GER) किसी वर्ष में कुल पात्र औपचारिक प्राथमिक विद्यालय.योग्य आयु वाले जनसमुदाय में से वास्तविक नामांकन के प्रतिशत के रूप में परिभाषित किया जाता है। कोई अनुपात GER $\geq$ 1 (100 प्रतिशत) दर्शाता है कि सिद्धांततः कोई राज्य अथवा देश अपने सभी विद्यालय-योग्य आयु वाले जनसमुदाय को शिक्षा संस्थाओं में समायोजित करने में सक्षम है। यह नामांकित पात्र जनसमुदाय का वास्तविक अनुपात नहीं दर्शाता। दूसरे शब्दों में, GER $\geq$ 1 वाले GER की उपलब्धि वास्तविक उपलब्धि की एक आवश्यक परंतु अपर्याप्त शर्त है। एक विशिष्ट स्थिति जहाँ GER 1 से अधिक हो सकता है, तब होगी जब 'अधिक-वय' एवं 'पुनरावर्तक' भी शामिल कर लिए जाएँ। उक्त अनुपात (GER) इसी व्याख्या की अपेक्षा करता है। पहले बालक और बालिकाओं के लिए अलग-अलग परिकलित, 'बालकों के प्रति बालिकाओं हेतु GER' के अनुपात को फिर 'स्त्री-पुरुष समता सूचकांक' (GPI) के रूप में परिभाषित किया जाता है। हाल की अवधि 2007-13 के लिए यह सूचकांक दर्शाता है कि प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा हेतु यह 1 के स्तर को पार कर चुका है। इसके अलावा ड्रॉपआउट (बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने) की दर के लिहाज से भी शिक्षा के चार में से तीन स्तरों, यथा प्राथमिक, माध्यमिक एवं वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा के लिए स्त्री-पुरुष समता सूचक में महत्त्वपूर्ण सुधार आया है (उदाहरण के लिए, वर्ष 2013-14 में यह प्राथमिक शिक्षा के लिए बालिकाओं हेतु 4.1 एवं बालकों हेतु 4.5 रहा, माध्यमिक शिक्षा के लिए बालिकाओं हेतु 17.8 एवं बालकों हेतु 17.9 रहा तथा वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा के लिए बालिकाओं हेतु 1.6 एवं बालकों हेतु 1.5 रहा)। तुलनात्मक रूप से, इसीलिए, शिक्षा के केवल 'उच्चतर प्राथमिक' स्तर पर बालिकाओं की ड्रॉपआउट दर बालकों से ऊँची रही, यथा– बालिकाएँ (4.5) और बालक (3.1) (2013-14)। यह देखते हुए कि वर्ष 1960-61 में ड्रॉपआउट दर 65 प्रतिशत तक ऊँची थी, इस संबंध में एक बड़ा सुधार आया है। एक पहलू जिस पर कि बालिकाओं के बढ़ते नामांकन संबंधी उपलब्धि निर्भर कर सकती है, 'अध्यापिकाओं की संख्या प्रति 100 अध्यापक' है। यह संख्या वर्ष 1951 में लगभग 20% तक नीची थी (तीन में से प्रत्येक विद्यालयी स्तर पर)। वर्ष 2011-12 तक यह शिक्षा के विभिन्न स्तरों हेतु 65-80 के स्तर तक क्रमिक रूप से बढ़ी है। यद्यपि, इस लिहाज़ से सुधार आया है, फिर भी शिक्षा के सभी स्तरों पर अध्यापिकाओं की संख्या बढ़ाने के लिए गुंजाइश है, वृहत्तर लिंग समता लाने की दिशा में भी और विद्यालयों से बालिकाओं की ड्रॉपआउट दरों को न्यूनतम करने के लिए भी।

6.4.2 गुणवत्ता

एक ग़ैर-सरकारी संगठन 'प्रथम' द्वारा ग्रामीण भारत में बच्चों की पठन एवं अंकगणितीय क्षमताओं का एक राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण प्रतिवर्ष करवाया जाता है। अपने मापदंडों और व्यापक कवरेज़ के चलते, इसकी शिक्षा की वार्षिक स्थिति रिपोर्ट (ASER) एक अनूठी पहल है। कक्षाओं I और VIII के बीच बच्चों की शिक्षा-ग्रहण उपलब्धि के मूल्यांकन हेतु यह एकमात्र भारतीय राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण है। अंकगणितीय क्षमता मापने के लिए बढ़ती कठिनाई की चार मूल परीक्षाएँ होती हैं और विद्यार्थियों को प्रत्येक परीक्षा के निम्न स्तर को पास कर लेने के बाद ही देने को कहा जाता है। ये हैं– (i) एक से नौ तक यादृच्छिक रूप से चुनी गई संख्याओं को पहचानना; (ii)

11 से 99 के बीच यादृच्छिक रूप से चुनी गई संख्याओं को पहचानना; (iii) हासिल लेकर दो-अंकीय संख्यात्मक प्रश्नों को घटाकर हल करना; और (iv) एक-अंक द्वारा तीन-अंक को भाग वाले संख्यात्मक प्रश्नों को हल करना। वर्ष 2010 में सर्वेक्षण के परिणामों ने दर्शाया कि कक्षा III में केवल 37 प्रतिशत बच्चे ही 100 तक की संख्याएँ पहचान सकते थे। इसके अलावा, मात्र 27 प्रतिशत विद्यार्थी ही अगले स्तर, यथा घटा करना तक पहुँच सके थे। और भी अधिक चिंताजनक यह बात थी कि उच्चतम परीक्षा स्तर तक पहुँचने वाले बच्चों का अनुपात वर्ष 2005, जबकि सर्वेक्षण प्रथम बार करवाया गया, से निरंतर गिरता रहा है। वर्ष 2005 में कक्षा III में कम से 15 प्रतिशत बच्चे सभी परीक्षाएँ पास कर लेते थे, जबकि वर्ष 2010 में यह घटकर मात्र 9 प्रतिशत रह गया। साथ ही, वर्ष 2010 में कक्षा VIII में 67 प्रतिशत बच्चे उच्चतम स्तर तक जा सके थे, जबकि वर्ष 2005 में तद्नुरूप संख्या 70 प्रतिशत थी। स्पष्ट है कि नामांकन बढ़ाने से शिक्षा-प्राप्ति का स्तर स्वतः नहीं सुधर जाता।

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता भी भारत में एक प्रमुख सरोकार रहा है। उक्त स्थित को सुधारने के लिए इस दिशा में उठाए गए कुछ नीति उपाय निम्नवत् है– (i) बाज़ार माँगों के साथ तुल्यकालिक बनाने के लिए शैक्षिक कार्यक्रम को पुनराभिकल्पित करना; (ii) सीखने के अंतर्क्रियात्मक तरीकों पर अधिक ज़ोर देना; (iii) मूल्यांकन प्रक्रिया व परीक्षाओं में परिवर्तन; (iv) अर्ध-वार्षिक पाठ्यक्रम व्यवस्था लागू करना; (v) अध्यापकों का मूल्यांकन; (vi) संस्थानों का श्रेणीकरण; (vii) अंतर्सांस्थानिक गतिशीलता सामर्थ्य हेतु क्रेडिट प्रणाली शुरू करना; (viii) प्राध्यापक वर्ग विकास कार्यक्रम; (ix) शैक्षिक योग्यताओं का राष्ट्रीय डेटाबेस बनाकर रखना; आदि। भारत में शिक्षा की राष्ट्रीय नीति ने प्रत्यायन अभिकरणों की स्थापना कर देशभर में उच्चतर शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने पर खास ज़ोर दिया है। इस तथ्य के बावजूद कि हमारे पास उच्चतर शिक्षा के 13 नियामक निकाय हैं, शिक्षा की गुणवत्ता काफ़ी निम्न है और इन कार्यक्रमों में विषय वस्तु 'व्यक्ति एवं समाज की आवश्यकताओं' के प्रति कम प्रासंगिक है। राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् (NAAC) द्वारा मूल्यांकन किए गए 3,674 महाविद्यालयों में से केवल 24.4 प्रतिशत महाविद्यालयों को ही 'ए' ग्रेड दिया गया है। हमारी शिक्षा व्यवस्था एक रोग से ग्रस्त है जिसे 'डिप्लोमा डिसीज़' की संज्ञा दी गई है, अर्थात् यह ज्ञान एवं कौशल अभिहस्तांतरित करने पर अभिलक्षित नहीं है, बल्कि यह प्रमाणन एवं प्रत्यायन से कहीं अधिक संबंध रखती है। दरअसल, मानव पूँजी की वृद्धि में इसका योगदान अत्यल्प है और कुछ व्यावसायों हेतु उठती माँगों को पूरा करने में अक्षम है।

6.5 शिक्षा का वित्तीयन

वित्तीयन और विशेषतः उच्च शिक्षा के अर्थ-प्रबंधन का तरीका, उच्चतर शिक्षा हेतु अभिकल्पित सभी प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अत्यावश्यक है, यथा विस्तारण, समावेशन एवं उत्कृष्टता। यद्यपि लोक वित्तीयन उच्चतर शिक्षा के अर्थ-प्रबंधन का प्रबल स्रोत रहा है, केंद्र व राज्यों दोनों के सम्मुख राजकोषीय संरोध तथा निश्चल राजस्व एवं बढ़ती लागत के बीच चौड़ी होती खाई ने सरकारी रूप से निधिबद्ध विश्वविद्यालयों को मज़बूर कर दिया कि वे निधिकरण के अतिरिक्त एवं वैकल्पिक स्रोत तलाशें। नई आर्थिक नीति के ही एक हिस्से के रूप में, नीतियों को इस प्रकार तैयार किया गया है कि वे उच्चतर शिक्षा के विस्तारण में योगदान देने के लिए उसके हस्तांतरण में निजी क्षेत्र को सम्मिलित करें। सरकारी और निजी निधिकरण के दो अंतर्बिंदुओं के बीच, हाल ही में, सरकार ने निजी क्षेत्र के साथ साझेदारियों की

संभावनाएँ तलाशना शुरू किया है ताकि निधिकरण के दोनों ही तरीकों का लाभ उठाया जा सके (हालाँकि, हमारे पास देश में कार्यरत सरकारी-निजी भागीदारी (PPP) के अनेक रूप पहले ही मौजूद हैं)। हमारे यहाँ अनेक सरकारी स्कूल, सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल और प्राइवेट स्कूल हैं। इसी प्रकार, उच्च शिक्षा स्तर पर यहाँ सरकारी कॉलेज, अंशतः विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) से निधिकृत कॉलेज, आदि हैं।

6.5.1 राज्य बनाम बाज़ार निधिकरण हेतु तर्क

निधिकरण के स्रोत स्वरूप बाज़ार की भूमिका 'नब्बे के दशकोपरांत तब शुरू हुई जब विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा संरचनात्मक समंजन कार्यक्रमों में सुझाया गया कि शिक्षा जैसे सामाजिक क्षेत्रों में सरकारी खर्च कम किया जाए। बाज़ार समर्थकों ने माना कि सरकार द्वारा प्रदत्त अर्थसहाय्य प्रतिगामी हैं क्योंकि मुख्य रूप से संभ्रांत वर्ग ही उच्चतर शिक्षा के लिए पहुँचता है और इस कारण वही इन परिदानों का प्रमुख लाभार्थी होता है। निधियाँ इस प्रकार ग़रीब वर्ग से अमीर वर्ग की ओर हस्तांतरित हो जाती हैं क्योंकि वह राशि जो ग़रीबों पर खर्च की जा सकती थी, घट जाती है। इसी को ठीक करने के लिए उनका कहना था कि सरकारी निधिकरण को उच्च शिक्षा से स्कूल-स्तर की शिक्षा की ओर मोड़ दिया जाए। बाज़ार समर्थकों द्वारा रखा गया एक अन्य तर्क यह था कि शिक्षा का राज्यीय निधिकरण शिक्षण संस्थानों को परतंत्र बनाएगा और इस कारण उन्हें कुशलतापूर्वक कार्य करने हेतु नितांत आवश्यक सांस्थानिक स्वायत्तता से वंचित करेगा। इससे बचने के लिए, यह सुझाव दिया गया कि निजी निधिकरण के सृजन को प्रोत्साहित किया जाए। यह भी तर्क दिया गया कि लागत वसूली उपाय शिक्षा की गुणवत्ता सुधारेंगे। विद्यार्थियों को अधिक कर्मठ बनाकर भी और अध्यापकों के बीच उत्तरदेयता का गुण मन में बैठाकर भी। निजी लाभ चूँकि सामाजिक लाभों की अपेक्षा अधिक होते हैं, माना गया कि लाभार्थीजन अपनी शिक्षा हेतु स्वयं भुगतान करने के इच्छुक होंगे ही।

बाज़ार प्रस्तावकों के इस तर्क का कि शिक्षा में निवेश पर सामाजिक लाभदर निजी लाभदर से कम होती है, 'राज्य निधिकरण समर्थकों हेतु' द्वारा निम्नलिखित आधारों पर उत्तर दिया जाता है। प्रथम, सामाजिक लाभ केवल उच्चतर शिक्षा के लिए कम होते हैं जबकि स्कूली शिक्षा हेतु एक सर्वसम्मति होती है कि इसे एक सार्वजनिक हित के रूप में लिया जाए। इसके अलावा, जब सकारात्मक बाह्यताएँ ध्यान में रखी जाती हैं तो परिणामित सामाजिक लाभदर निजी लाभदर से कहीं आगे निकल जाती है। इससे शिक्षा के निधिकरण में राज्य की भूमिका निर्णायक बन जाती है। दूसरे, उपभोक्तागण प्रायः उन लाभों से अनभिज्ञ होते हैं जिन्हें वे शिक्षा में निवेश करके प्राप्त करेंगे। इसके अलावा, वे समाज पर अपनी शिक्षा के सकारात्मक अधिप्लव प्रभावों पर भी संभवतः ध्यान न दें (जैसे– सुधरता परिवार स्वास्थ्य, उत्पादकता, ग़रीबी की दरों में गिरावट, आदि)। चूँकि सरकार को इस प्रकार के निर्णय लेने में अधिक विवेकी माना जाता है, शिक्षा के प्रावधान में राज्य निधिकरण अवसर की समानता सुनिश्चित करने हेतु वांछित होता है। इसके अतिरिक्त, चूँकि हर कुटुंब/व्यक्ति शिक्षा में निवेश हेतु वांछित संसाधन संपन्न नहीं होता, राज्य परिदानों के अभाव में, केवल भुगतान में सक्षम ही स्कूल व कॉलेजों में नाम लिखवा पाएँगे। दूसरे शब्दों में, वे जो गुणवान हैं परंतु संसाधन विहीन हैं, बाहर ही रह जाएँगे।

समता के परिणाम प्राप्त करने के लिए बाज़ार प्रस्तावकों का तर्क था कि शिक्षा ऋणों की सुलभता सुधारी जा सकती है। तथापि, चूँकि पूँजी बाज़ार अपनी ही अपूर्णताओं से पीड़ित है, इस प्रकार के उपाय यथेष्ट नहीं होंगे। इसके अतिरिक्त, चूँकि मानव पूँजी लोगों में ही सम्मिलित होती है, इसे द्रव संपत्ति के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। भावी आय अवसरों की अनिश्चितता के कारण ऐसे ऋणों का पुनर्भुगतान प्रारंभ होने के लिए एक लंबी विकसन अवधि भी होती है। इस प्रकार के कारक लोगों द्वारा ऐसे ऋण प्राप्त किए जाने के साथ-साथ संस्थाओं को भी ऋण प्रस्तुत करने से रोकेंगे। इस प्रकार, अपूर्ण पूँजी बाज़ार की विद्यमानता एक ऐसा बड़ा कारण बन जाता है जिसकी वजह से शिक्षा में निवेश करने के लिए राज्य की भूमिका को जारी रखने की आवश्यकता है। एक अन्य दृष्टिकोण यह है कि विपन्न वर्ग को शैक्षणिक ऋण समावेशन एवं समता के उद्देश्य पूरे नहीं करते क्योंकि ये ऋण केवल चुनिंदा पाठ्यक्रमों/संस्थाओं के लिए ही उपलब्ध होते हैं और इस प्रकार समावेशन का उद्देश्य पूरा होना प्रायः असंभव ही होता है।

6.5.2 शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय

यदि हम सकारात्मक बाह्यताओं के रूप में अधिप्लव प्रभावों पर विचार करें तो शिक्षा किसी भी स्तर पर केवल प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तरों पर ही नहीं, एक 'लोकहित' के रूप में लिए जाने के योग्य है। अपने नियमनिष्ठ अर्थ में, शिक्षा को एक विशेष 'गुण वस्तु' के रूप में लिया जाता है। परिभाषा के अनुसार, 'शिक्षा' जैसी कोई भी वस्तु जिसे समाज अथवा सरकार द्वारा लोक वित्त के योग्य माना जाता है, विशेष गुण वस्तु के रूप में ली जाती है। अधिक सामान्य रूप से, विशेष गुण वस्तुओं को उन वस्तुओं (अथवा सेवाओं) के रूप में लिया जाता है जो कि सरकार नहीं चाहती कि लोग महज इसलिए अल्प-उपभोग करें कि उनका उपभोग उनकी 'भुगतान करने की क्षमता' पर निर्भर करता है। ऐसे अल्प-उपभोग को रोकने के लिए सरकार या तो ऐसी सेवाओं को आर्थिक सहायता देने का विकल्प चुनती है या फिर उन्हें उनके उपभोग बिंदु पर एकदम मुफ़्त उपलब्ध कराती है। शिक्षा के सार्वजनिक के साथ-साथ विशेष गुण वस्तु के मिश्रित अभिलक्षणों की दृष्टि से शिक्षा को प्रायः 'सार्वजनिक विशेष गुण वस्तु' भी कहा जाता है। शैक्षणिक सेवाएँ प्रदान करने हेतु निवेश पर प्रभाव डालते हुए, कोई विशाल प्रतिष्ठान अथवा निर्धारित लागत और साथ ही एक पुनरावर्तक परिचालन. लागत, सरकार के निवेश सरोकारों पर प्रभाव डालते अभिलक्षण निम्नवत् हैं– (i) उपभोक्ता अनभिज्ञता; (ii) पैमाने की तकनीकी मितव्ययताएं; (iii) उत्पादन एवं उपभोग में बाह्ताएँ; तथा (iv) बाज़ार में अंतर्निहित अपूर्णताएँ (जैसे ऋण संस्थाओं का अभाव)। शिक्षा में सार्वजनिक निवेश के मुद्दे पर, सकल घरेलू उत्पाद (GDP) के प्रतिशत के रूप में व्यय बताने की एक परंपरा सी है (तालिका 6.1)। इस संबंध में भारत के लिए रुझान दर्शाता है कि वर्ष 1961-81 के बीच शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय 1.5 प्रतिशत से 3 प्रतिशत अर्थात् दोगुना हो गया। तदोपरांत, यह वर्ष 1981 व 2001 के बीच यह मात्र 1 प्रतिशत और बढ़ पाया (वर्ष 2001 में 4.1 प्रतिशत)। सन् 2000 के पश्चात् के वर्षों में शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय कम हुआ है (उदाहरणार्थ, 2005-06, 3.3 प्रतिशत)। वर्ष 2005-06 से 2007 तक 3.5 प्रतिशत से वर्ष 2010 में यह बढ़कर 4 प्रतिशत हो गया। सकल घरेलू उत्पाद (GDP) (वर्ष 2014 में) के मात्र 4.1 प्रतिशत के आस-पास रहकर शिक्षा में सार्वजनिक व्यय की गतिहीनता अन्य देशों के साथ तुलनात्मक वर्णन में नितांत विषमता दर्शाती है (नेपाल 4.7 प्रतिशत, जर्मन 4.9 प्रतिशत, अमेरिका 5.2 प्रतिशत, यूनाइटेड किंग्डम 5.7 प्रतिशत, तथा दक्षिण अफ्रीका 6.1 प्रतिशत)। जैसा कि

ऊपर बताया गया है, भारत में शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय में गिरावट राजकोषीय संरोधों के कारण है, जहाँ प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर के लिए अपेक्षाकृत अधिक संसाधन आबंटित किए जाते हैं, परंतु उच्च शिक्षा के लिए लागत वसूली की दिशा में रुझान नज़र आता है।

तालिका 6.1 : सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत स्वरूप शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय

वर्ष	प्रतिशत
1960.61	1.5
1970.71	2.1
1980.81	3.0
1990.91	3.8
2000.01	4.1
2010.11	4.1

स्रोत : मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।

6.5.3 वित्तीयन के वैकल्पिक स्रोत

शिक्षा संबंधी वित्त के बोझ को घटाने की दृष्टि से अनेक वैकल्पिक विधियाँ अपनाई गई हैं। इस उद्देश्य को पूरा करने का एक तरीका संस्थानों को दिए जाने वाले अर्थसहाय्य कम किए जाना है। इससे लागत साझा करने की विधियों का सहारा लेकर लागतों की वसूली आवश्यक हो जाएगी। लागत-साझेदारी एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा वित्तीयन का बोझ लाभार्थियों पर डाल दिया जाता है, यथा कुटुंब, उद्योग एवं स्वयं छात्र पर। लागत-साझेदारी मुख्यतः उच्च/व्यावसायिक शिक्षण कार्यक्रमों के संदर्भ में लोकप्रिय रूप से कार्यान्वित की जा रही है। इसके अंतर्गत अपनाई जाने वाली कुछ विधियों में शामिल हैं– (i) फ़ीस बढ़ाना; (ii) विभेदी फ़ीस प्राधार अपनाना; (iii) स्नातक कर; और (iv) छात्र ऋण।

फ़ीस बढ़ाने की विधि के अनेक रूप हैं– (i) समस्त स्नातक एवं स्नातकोत्तर कार्यक्रमों में एकसमान वृद्धि; (ii) पाठ्यक्रमों की निवेश लागत के आधार पर फ़ीस वृद्धि; तथा (iii) वसूल की जाने वाली फ़ीस निर्धारित करने के लिए महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों को स्वायत्तता प्रदान करना। इन सभी मामलों में, एकसमान पाठ्यक्रम पढ़ने वाले छात्रों से एकसमान ही फ़ीस वसूली जाती है। दूसरे शब्दों में, यहाँ भुगतान करने में सक्षम और भुगतान करने में अक्षम के बीच कोई भेद नहीं किया जाता। यह दृष्टिकोण, तद्नुसार, समता के सरोकारों का उल्लंघन करता है। इसके निदान स्वरूप विभेदात्मक फ़ीस प्राधार की विधि का सुझाव दिया जाता है; यथा परिवार के आय-स्तर अथवा भुगतान क्षमता से संबद्ध पाठ्यक्रम फ़ीस। निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर से आने वालों से कम फ़ीस वसूली जाती है और उच्च-आय समूहों से आने वालों से अधिक भुगतान करने को कहा जाता है। 'स्नातक कर' विधि में शिक्षित कार्यबल नियुक्त करने वाले नियोक्ताओं पर एक कर लगाया जाता है। इस विधि हेतु इस मामले को आधार बनाया जाता है कि ये जिन शिक्षित लोगों का लाभ उठा रहे हैं, उनके प्रशिक्षण पर ख़र्च नहीं कर रहे। यह विधि इस बात में अलाभकारी है कि इससे

नियोक्ता कम शिक्षित कर्मचारियों को रखने की ओर प्रेरित हो सकते हैं, जिससे शिक्षित वर्ग के बीच बेरोज़गारी की समस्या बढ़ सकती है। बहरहाल, चूँकि केवल शिक्षित कार्यबल ही उन विशिष्ट प्रकार के कार्यों को कर सकता है जो ज्ञान गहन होते हैं, इसका प्रतिस्थापन प्रभाव कम ही होने की अपेक्षा की जाती है। 'छात्र ऋण' की विधि लाभार्थियों को सीधे लक्ष्य बनाती है। जबकि सरकार द्वारा गठित अनेक समितियों ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया है, यह भी कहा जाता है कि इसने समता के सरोकारों को प्रतिकूलतः प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए, यह विधि उन पाठ्यक्रमों को प्रोत्साहन दिए जाने की ओर प्रवृत्त कर सकती है जो उच्चतर रोज़गार बाज़ार वाले हों और साथ ही उन पाठ्यक्रमों को अनदेखी कर सकती है जो किसी सामाजिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण हो सकते हों। इस विधि के साथ एक अन्य समस्या अपर्याप्त रूप से विकसित ऋण बाज़ार और ऋणों की वसूली संबंधी समस्या भी है, जो कि अनिश्चित भावी रोज़गार बाज़ारों पर निर्भर करती है।

शिक्षा के प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर हेतु एक सामान्यतः अपनाई जाने वाली विधि 'पूर्व आबंटन' है। इसका अर्थ है कि किसी उद्देश्य विशेष से किसी विशेष उपकर की उगाही। सर्वशिक्षा अभियान (SSA) नामक कार्यक्रम ने इस विधि से अपने धन का बड़ा भाग सृजित किया है। अनेक देशों (विकसित एवं विकासशील दोनों) ने इस विधि को सफलतापूर्वक अपनाया है। एक अन्य विधि जो स्कूल स्तर पर सफलतापूर्वक क्रियान्वित की जा चुकी है, वह है– 'प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण' (DBT) विधि। सरकारी स्कूलों की बड़ी समस्या है– शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रभाव डालती उत्तरदेयता। उक्त विधि (DBT) को इस समस्या का निदान बताया जाता है क्योंकि इससे ग़रीब कुटुंब/माता.पिता को अपनी पसंद के ही किसी स्कूल को चुनने का अधिकार प्रदान कर दिया जाता है। यह एक प्रमाणक व्यवस्था है जिसमें कोई भी माता अथवा पिता किसी बच्चे को उस स्कूल में दाख़िला दिला सकता है जो उस प्रमाण-पत्र की राशि तक फ़ीस वसूल सकता हो। माता-पिता किसी भी प्रकार का संस्थान (निजी, सहायता प्राप्त अथवा सरकारी) चुन सकते हैं, जहाँ वसूली गई फ़ीस यदि प्रमाण-पत्र राशि से अधिक हुई तो परिवार द्वारा स्वयं वह अधिक राशि चुकाई जाएगी। प्रमाण-पत्र का मूल्य चूँकि 'पारिवारिक आय के प्रतिलोम' द्वारा निर्धारित किया जाता है (यथा, दरिद्रतर परिवारों को उच्चतर मूल्य के प्रमाण-पत्र मिलेंगे), इस विधि को वृहत्तर समता का साधन बन जाने की संभावना के रूप में देखा जाता है। इस विधि की एक आलोचना यह कहकर की जाती है कि यह विधि पिछड़े/ग्रामीण क्षेत्रों में कारगर सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि ऐसे इलाकों में संभवतः जाने.माने प्राइवेट स्कूल न हों। तथापि, वर्ष 2014-15 हेतु राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) से प्राप्त आँकड़े दर्शाते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में निजी ग़ैर-सहायता प्राप्त प्राथमिक विद्यालयों द्वारा वसूली गई प्रति माह माध्यमिक फ़ीस रु. 292/- रही जबकि शहरी क्षेत्रों में यह रु. 542/- थी। इस तथ्य के आलोक में, यह तर्क दिया जाता है कि रु. 500/- प्रति माह का एक अपेक्षाकृत कम मूल्य का प्रमाण-पत्र भी सुदूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों तक में कुल खर्च का एक महत्त्वपूर्ण अंश निरूपित कर सकता है। उक्त विधि (DBT) के विषय में एक अन्य सरोकार यह है कि वर्तमान 'अनुदान सहायता' व्यवस्था से कैसे छुटकारा पाया जाए, जो कि अध्यापकों की वेतन अपेक्षाएँ पूरा करने के समतुल्य रखी जाती है। यह अनुदान व्यवस्था, विद्यालयों को प्राथमिकता देती है, न कि शिष्यों/छात्रों को। इस प्रकार का अनुदान छात्रों की संख्या को ध्यान में नहीं रखता है। यह अध्यापकों का उनकी उत्तरदेयता के प्रति रवैये को ठीक कर पाने के प्रयास में विफल ही रहा है। उक्त विधि (DBT) के साथ, यह कहा जाता है कि अध्यापकों को आकृष्ट करने,

प्रतिधारित करने व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित करना होगा। इस विधि को लागू करने की दिशा में, सरकार 'विद्यालय समेकन' पर विचार कर रही है, जिसमें अति लघु विद्यालयों का नज़दीक के बड़े विद्यालयों के साथ विलय कर दिया जाता है और अध्यापकों को अधि-नामांकित विद्यालयों से अल्प-नामांकित विद्यालयों में पुनर्परिनियोजित कर दिया जाता है। अनेक देश (जैसे– कोलंबिया, चिली, नीदरलैंड, न्यूज़ीलैंड, अमेरिका) उक्त विधि (DBT) को उत्तर प्रभाव के साथ प्रयोग कर चुके हैं।

बोध प्रश्न 2 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें)।

1) शिक्षा में निकृष्ट कार्य-प्रदर्शन सुधारने के लिए किन विशिष्ट नीतियों की आवश्यकता है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) स्त्री-पुरुष समता सूचकांक (GPI) को किस प्रकार परिभाषित किया जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) विद्यालयों में बालिकाओं का नामांकन अनुपात किस प्रकार सुधारा जा सकता है?

.....

.....

.....

.....

.....

4) इस बात को सिद्ध करने के लिए कि हाल के वर्षों में गुणवत्ता के लिहाज़ से स्कूल-स्तरीय शिक्षा व्यवस्था अवनत हुई हैं, उपलब्ध संसूचक क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

5) जब बाज़ार प्रस्तावकों ने शिक्षा के सरकारी निधिकरण का विरोध किया तो कौन-से तर्क देकर इस व्यवस्था का पक्ष लिया गया?

.....

.....

.....

.....

6) शिक्षा को सार्वजनिक वस्तु कहना उचित होगा कि एक विशेष गुण वस्तु? अपने उत्तर के समर्थन में कारण दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

6.6 सार-संक्षेप

भारत में शिक्षा क्षेत्र के परिमाणात्मक विस्तार में भारी प्रगति हुई है। फिर भी, शिक्षा हेतु माँग उपलब्ध आपूर्ति की सीमा से बाहर विस्तारित हो चली है। इसके कारण, शिक्षा प्राप्ति में विषमता परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों ही मोर्चों पर दिखाई पड़ती है। हमारे नीति-निर्माताओं का एक प्रमुख चिंत्य विषय यह रहा है कि उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग अधिक प्रभावशाली रूप से, समता संबंधी सरोकारों से समझौता किए बिना, किस प्रकार किया जाए। संसाधन के मोर्चे पर औचित्य स्थापन की दिशा में, स्कूल स्तरीय शिक्षा हेतु सार्वजनिक निधिकरण और शिक्षा के उच्च स्तर हेतु लागत-साझेदारी पर विचार किया जा रहा है। स्कूल स्तर पर अध्यापकों की उत्तरदेयता संबंधी जटिल समस्या को दूर करने के लिए प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण, विद्यालय समेकन, आदि विधियाँ अपनाई जा रही हैं।

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Varghese N.V. and G. Mallik, Eds. (2017). India Higher Education Report 2015, Routledge, 2017.

2) Romer, Paul M. (1990). "Human Capital and Growth: Theory and Evidence", *Carneige- Rochester Series on Public Policy* 32: 251-86.

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) इसे जनसमुदाय द्वारा धारित ज्ञान भंडार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है और इसके दायरे में आते हैं– जानकारी, प्रतिभाएँ, कौशल, क्षमताएँ, अनुभव, प्रज्ञा, प्रशिक्षण, निर्णय, आदि। प्रो. थियोडोर डब्ल्यू. शुल्ज़।

2) लोगों के अधिकारों एवं अवसरों को शामिल करने और उसे समग्र मानव क्षेम से जोड़कर। यह, तद्नुसार, एक वृहत्तर संकल्पना है जो मानव मात्र को स्वयं में साध्य मानता है।

3) व्यापक सुलभता, व्यापक नामांकन, व्यापक धारण, व्यापक उपलब्धि तथा समता।

4) संस्थाओं के लिहाज से 6 गुना और नामांकन के लिहाज से 9 गुना (क्रमशः 2 लाख से 13 लाख और 2.2 करोड़ से 19.8 करोड़)।

5) 'समान स्कूल प्रणाली' के तहत, किसी क्षेत्र विशेष में स्थित स्कूलों के लिए यह आवश्यक है कि वे पड़ोस में रह रहे निम्न-आय परिवारों से विद्यार्थियों को प्रवेश दें।

6) महाविद्यालय 38 गुना तक, विश्वविद्यालय 28 गुना तक और महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों में नामांकन 86 गुना तक।

7) नहीं। कारण : त्वरित विस्तार, उच्चतर, तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षण क्षेत्रों में लंबे समय से लंबित सुधारों के साथ नहीं हुआ।

बोध प्रश्न 2

1) स्कूल में हाज़िरी के लिए प्रोत्साहन, मिडिल/हाई स्कूल पाठ्यक्रम को रोज़गारोन्मुखी व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए सरल बनाना, आदि।

2) इसे 'बालिकाओं एवं बालकों के सकल नामांकन के सापेक्ष अनुपात' के रूप में परिभाषित किया जाता है।

3) विद्यालयों में अध्यापिकाओं का अनुपात (प्रति 100 अध्यापक) बढ़ाने पर ध्यान देकर (उपभाग 6.4.1)।

4) शिक्षा की वार्षिक स्थिति रिपोर्ट, जिसने ऐसे बच्चों के गिरते अनुपात की रिपोर्ट दी जो वर्ष 2005-2010 के दौरान एक स्तर से दूसरे स्तर के लिए पात्रता दर्शा सकते थे (उपभाग 6.4.2)।

5) सकारात्मक बाह्यताओं को विचारार्थ लिए जाने पर सामाजिक लाभ उच्च शिक्षा में भी ऊँचे माने गए। शिक्षा के निम्नतर स्तर (किसी भी स्थिति में), सार्वजनिक वस्तु की भाँति माने जाते हैं जो कि समग्र समाज को लाभ पहुँचाएंगे।

6) चूँकि शिक्षा के लाभ समग्र समाज को पहुँचते हैं, न कि सिर्फ़ उसको जो शिक्षित होता है, इसमें एक सार्वजनिक वस्तु का अभिलक्षण है। तथापि, ठीक इसी कारण, चूँकि इसके ग़ैर-सरकारी निधिकरण के कारण कुछ लोग इससे अल्प-लाभान्वित हो सकते है, इसे अधिक सटीक रूप से 'विशेष गुण वस्तु' के रूप में स्वीकार किया जाता है।

इकाई 7 स्वास्थ्य तथा पोषण*

संरचना

7.0 उद्देश्य

7.1 विषय प्रवेश

7.2 स्वास्थ्य एवं पोषण का मापदंड : अवधारणाएँ

7.2.1 कुपोषण

7.2.2 सशक्तता-समंजित जीवन वर्ष/अशक्तता-समंजित जीवन वर्ष

7.3 स्वास्थ्य व्यय

7.3.1 स्वास्थ्य व्यय के स्रोत

7.4 भारत में जन-स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली

7.4.1 निवारक एवं रोगहर स्वास्थ्य परिचर्या

7.4.2 स्वास्थ्य वित्तीयन

7.5 भारत में स्वास्थ्य नीति

7.5.1 राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति

7.6 सार-संक्षेप

7.7 शब्दावली

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- स्वास्थ्य एवं पोषण संबंधी अवधारणाओं को स्पष्ट कर सकें;
- प्रमुख संकेतकों के आधार पर स्वास्थ्य एवं पोषण की स्थिति स्पष्ट कर सकें;
- स्वास्थ्य व्यय बढ़ाने में योगकारी कारकों को पहचान सकें;
- भारतीय जन स्वास्थ्य प्रणाली की संरचना समझा सकें;
- निवारक एवं रोगहर स्वास्थ्य परिचर्या आवश्यकताओं में भेद कर सकें;
- भारत में स्वास्थ्य रक्षा वित्तीयन में रुझानों पर चर्चा कर सकें; और
- भारत में सरकार द्वारा लाई गई विभिन्न स्वास्थ्य नीतियों के अभिलक्षणों की रूपरेखा बना सकें।

7.1 विषय प्रवेश

अंग्रेज़ी में एक आम कहावत है– 'हैल्थ इज़ वैल्थ' अर्थात् 'स्वास्थ्य ही धन है'। एक मानव विकास के दृष्टिकोण से उत्तम स्वास्थ्य एवं पोषण किसी व्यक्ति के शारीरिक एवं संज्ञानात्मक विकास में अपना अमूल्य योगदान करते हैं। कुपोषण संक्रमण के प्रति

* डॉ. स्मृतिकन घोष, सहायक आचार्य, स्कॉटिश कॉलेज, कोलकाता

संवेदनशीता बढ़ा देता है और स्वास्थ्य लाभ विलम्बित करता है, जिससे देश के लिए रोग और रुग्णता का बोझ विशाल रूप ले लेता है।

कुपोषण असंसर्गजनित रोगों से जुड़े मामलों की संख्या बढ़ा भी देता है, जिससे स्वास्थ्य परिचर्या संबंधी लागत बेतहाशा बढ़ जाती है। तथापि, अधिकांश विकासशील एवं अल्प-विकसित देशों में, दुर्भाग्यवश, अस्वस्थता या बुरे स्वास्थ्य को एक दीर्घकालिक समस्या है, जहाँ भारत अपने स्वास्थ्य एवं पोषण पदानुक्रम की दृष्टि से बहुत निचले स्थान पर है। विशेष रूप से, बच्चों के मामले में स्थिति कहीं अधिक संवेदनशील है क्योंकि विश्व बैंक के अनुसार, भारतीय बच्चों का 22 प्रतिशत रोग प्रभाव तो कुपोषण के कारण ही है।

वैचारिक रूप से, **स्वास्थ्य** का अर्थ है – 'रोग-व्याधियों से मुक्ति'। आनुभविक रूप से, इसे रोग-व्यापकता दरों और प्रकार्यात्मक अशक्तता मापदंडों के द्वारा मापा जाता है। किसी व्यक्ति को स्वस्थ कहा जाता है यदि वह उसकी निम्न रोग-व्याप्ति दर और शून्य प्रकार्यात्मक अशक्तता हो। दूसरी ओर, **पोषण**, पोषाहार का एक मापदंड है। यह उस प्रक्रिया से संबंध रखता है जिससे होकर हमारा शरीर हमारे द्वारा ग्रहण किए गए भोजन में विद्यमान पोषक तत्वों की वांछित मात्रा अवशोषित करता है। स्वास्थ्य स्थिति तद्नुसार किसी व्यक्ति अथवा समुदाय की पोषण की स्थिति से अभिन्न रूप से जुड़ी होती है।

7.2 स्वास्थ्य एवं पोषण का मापदंड : अवधारणाएँ

भारत के विकास के वर्तमान स्तर पर दृष्टि डालें तो उसका स्वास्थ्य परिदृश्य भी सुधर रहा है। शिशु मृत्यु दर (IMR) और पाँच-पूर्व (पाँच वर्ष पूर्ण करने से पहले) मृत्यु दरों के लिहाज से भारत में महत्त्वपूर्ण रूप से सुधार आया है। पिछले दो दशकों की अवधि में (1992-93 से 2015-16 तक), शिशु मृत्यु दर 86 से 41 पर और पाँच-पूर्व मृत्यु दर 119 से 50 पर आ गई (तालिका 7.1)। हमारे लिए यह देखना महत्वपूर्ण होगा कि ये प्रमुख संकेतक किस प्रकार मापे और आकलित किए जाते हैं।

तालिका 7.1 : भारत की स्वास्थ्य स्थिति : (1993.2016)

स्वास्थ्य स्थिति	NFHS I (1992-93)	NFHS II (1998-99)	NFHS III (2005-06)	NFHS IV (2015-16)
शिशु मर्त्यता	86.3	73	57	41
पाँच-पूर्व मर्त्यता	118.8	101.4	74	50
नवजात मर्त्यता	52.7	47.7	NA	NA
उत्तर-नवजात मर्त्यता	33.7	25.3	NA	NA
मातृ मर्त्यता दर	437	530	NA	NA
अशोधित मृत्यु दर	9.7	9.7	NA	NA

स्रोत : *राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण*–I, II, III और IV उपलब्ध नहीं।

शिशु मर्त्यता – किसी नवजात शिशु की मृत्यु उसके प्रथम जन्मदिवस से पूर्व ही हो जाने की संभावना को शिशु मर्त्यता कहा जाता है। संख्यात्मक रूप से, यह किसी वर्ष में शिशु मृत्यु संख्या प्रति 1000 नवजात संख्या है। संक्षेप में, IMR के रूप में लिखे जाने पर : IMR = (शिशु मृत्यु संख्या/जीवित जन्में शिशुओं की संख्या) × 1000. उदाहरण के लिए, मान लीजिए वर्ष 2016 में, किसी राज्य के निवासियों के बीच शिशु मृत्यु संख्या 1300 है और राज्य में जीवित जन्में शिशुओं की संख्या 150000 है। तब

IMR= (1300 / 150000)×1000 = 8.7. विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार, विश्व की पांच-पूर्व मृत्यु संख्या का 75 प्रतिशत शिशु जीवन के प्रथम वर्ष के भीतर ही है।

पाँच-पूर्व मर्त्यता इसे 'बाल मर्त्यता' भी कहा जाता है। यह प्रथम और पाँचवें जन्मदिवस के बीच मरने की प्रायिकता है, जिसे मृत्यु संख्या प्रति 1000 प्रति वर्ष के रूप में मापा जाता है। इसे इस रूप में मापा जाता है : बाल मर्त्यता (CMR) = (D/N)×1000 जहाँ D = आकलन वर्ष के दौरान 0-4 वर्ष के बीच मृत्यु संख्या तथा N = आकलन वर्ष के दौरान जीवित जन्मी संख्या। परिकलन के उद्देश्य से आँकड़े नवजात पंजीकरण के लिए जाते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, विश्व में लगभग 90 लाख बच्चे अपना 5वाँ जन्मदिन मनाने से पूर्व ही मर जाते हैं। इस प्रकार की मृत्यु के कारण होते हैं– निमोनिया, अतिसार व कुपोषण।

नवजात मर्त्यता – यह जन्मोपरांत किसी शिशु के जीवन के प्रथम माह अथवा प्रथम 28 दिनों के भीतर ही मर जाने की प्रायिकता है।

तद्नुसार, नवजात मर्त्यता = (नवजात मृत्यु संख्या / कुल जीवित जन्मी संख्या) × 1000. यूनिसेफ (UNICEF) के अनुसार, नवजात मर्त्यता वर्ष 1990 में 36 मृत प्रति 1000 जीवित जन्म की संख्या वर्ष 2015 में घटकर 19 मृत प्रति 1000 जीवित जन्म रह गई।

उत्तर-नवजात मर्त्यता – यह शिशु और नवजात मर्त्यता के बीच अंतर है अर्थात् किसी भौगोलिक क्षेत्र विशेष में निवासी जीवित नवजात संख्या द्वारा (उसी क्षेत्र में) विभाजित 28 दिन व 364 दिनों के बीच मरने वाले नवजातों की संख्या है। मर्त्यता दर प्रति 1000 जीवित नवजात दर्शाने के लिए उक्त मान को 1000 से गुणा कर दिया जाता है। तद्नुसार, उत्तर.नवजात मर्त्यता = (निवासी उत्तर जन्म मृत्यु संख्या / कुल निवासी जीवित जन्म संख्या) × 1000.

मातृ मर्त्यता दर – यह दर उन स्त्रियों की संख्या बतलाता है जो प्रति 1,00,000 जीवित प्रसव एवं गर्भधारण संबंधी जटिलता के परिणामस्वरूप मर जाती हैं। यह इस प्रकार, गर्भधारण से जुड़े जोखिम की ओर संकेत करती है। तद्नुसार, मातृ मर्त्यता दर (MMR) = (किसी संदर्भ अवधि के दौरान प्रसव मृत्यु संख्या / उसी संदर्भ अवधि के दौरान जीवित जन्मों की कुल संख्या) × 1,00,000। यूनिसेफ (UNICEF) के अनुसार, वर्ष 1990 और 2015 के बीच मातृ मर्त्यता दर घटक लगभग आधी अर्थात् 50 प्रतिशत रह गई।

उपर्युक्त संकेतकों के अनुसार भारतीय स्वास्थ्य परिदृश्य तालिका 7.1 में इंगित किया गया है। यह दर्शाता है कि सिवाय मातृ मर्त्यता दर और अशोधित मृत्यु दर के, अन्य सभी दरें गिर रही हैं। अशोधित मृत्यु (प्रतिवर्ष प्रति 1000 मृत्यु संख्या के रूप में परिभाषित) प्रथम दो राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षणों (NFHS) में अचर रही किंतु मातृ मर्त्यता दर उसी अवधि में बढ़ी है।

7.2.1 कुपोषण

कुपोषण अति-पोषण भी हो सकता है और न्यून-पोषण भी। न्यून-पोषण निम्न-भार अर्थात् कम वज़न, रुद्ध विकास एवं दुबलापन आदि सूचकों से मापा जाता है। **दुबलापन** सर्वेक्षण से तत्काल पूर्व अवधि में पर्याप्त पोषण प्राप्त करने में विफलता को

दर्शाता है और कुपोषण के विस्तार का संकेत देता है। यह अपर्याप्त भोजन लेने अथवा किसी हालिया बीमारी से कम वज़न हो जाने और कुपोषण प्रारंभ हो जाने के फलस्वरूप हो सकता है। ऐसे व्यक्ति जिनकी लम्बाई-भार का अनुपात Z-मान –3SD (संदर्भ जनसंख्या की माध्यिका से ऋण तीन मानक विचलन) से नीचे हो तो उन्हें 'गंभीर रूप से कुपोषित' और जो –2SD से नीचे हों, उन्हें 'कुपोषित' कहा जाता है। तद्नुसार, यदि ऐसे 10 व्यक्ति हों जिनका Z-मान क्रमशः इस प्रकार हो– यथा, –4.1SD, –3.9SD, –31SD, –2.8SD, –2.1SD, –2.0SD, –1.1SD, 1.5SD, 1.9SD और 2.5SD, तो प्रथम तीन व्यक्ति गंभीर रूप से कुपोषित हैं, अगले तीन व्यक्ति कुपोषित हैं और अंतिम चार पोषित हैं। ध्यान दें कि ऋणात्मक पक्ष में, –1SD तक, एक सीमांत व्यक्ति को कुपोषित श्रेणी में न रखे जाने के लिए छोड़ा गया है। इसी प्रकार आयु लम्बाई अनुपात 'सेंटीमीटर में लम्बाई और महीनों में आयु' का अनुपात है। इस अनुपात को Z-मान 'रैखिक वृद्धि मंदन' एवं 'संचयी वृद्धि न्यूनता' के एक संकेतक के रूप में लिया जाता है। कुपोषण की सीमा में आने वाले, वे लोग जिनकी आयु–लंबाई का Z-मान संदर्भ समुदाय की माध्यिका से –2 SD से कम है, अपनी आयु के लिए 'रुद्ध विकसित' माने जाते हैं और उन्हें 'कुपोषित' की संज्ञा दी जाती है। इसी प्रकार, जब यह Z-मान –3SD से कम होता है तो व्यक्ति को 'गंभीर रूप से रुद्ध' विकसित अथवा 'दीर्घकालिक रूप से कुपोषित' कहा जाता है। रुद्ध विकास एक लम्बी अवधि तक पर्याप्त पोषण प्राप्त करने में विफलता दर्शाता है। इस प्रकार की विफलताएँ पुनरावर्त्तक एवं दीर्घकालिक अस्वस्थता द्वारा भी प्रभावित होती हैं।

आयु–भार अनुपात : आयु-लंबाई और लंबाई-भार का एक संश्लिष्ट संसूचक है जो प्रचंड और दीर्घावधिक कुपोषण दोनों का ध्यान रखता है। ऐसे व्यक्ति जिनकी आयु–भार संदर्भ समुदाय की माध्यिका से –2SD नीचे हो, **न्यून-भार** श्रेणी में आते हैं। कभी-कभी रक्ताल्पता स्तर भी न्यून-पोषण के सूचक के रूप में लिया जाता है। पोषण संबंधी साहित्य में वयस्क कुपोषण तथा बाल कुपोषण के बीच भेद इस प्रकार किया जाता है :

वयस्क कुपोषण शरीर-संहति-सूचक (BMI), रक्ताल्पता स्तर एवं भाराधिक्य से मापा जाता है। उक्त सूचक (BMI) लम्बाई-वर्ग द्वारा विभाजित भार' के रूप में मापा जाता है (यथा, किलोग्राम/मीटर^2, जहाँ भार किलोग्राम में और लम्बाई मीटर में व्यक्त है)। इस सूचक का मान मानक से नीचे होता है तो वह 'कुपोषित' कहलाता है। दूसरी ओर, जब यह सूचक 25 से अधिक होता है तो व्यक्ति 'मोटा' कहलाता है। रक्ताल्पता के शिकार लोगों में, उक्त सूचक (BMI) स्त्रियों के लिए 12 और पुरुषों के लिए 13 लिया जाता है। भारत में, कालान्तर में न्यून-भार स्त्रियों और पुरुषों के अनुपात में ह्रासमान रुझान देखा गया है (तालिका 7.2)। तथापि, गत 15 से 20 वर्षों में अति-भार स्त्री-पुरुषों के प्रतिशत महत्त्वपूर्ण रूप से बढ़े हैं। यह बहुत भयप्रद है। इसी काल वितान में रक्ताल्प स्त्री-पुरुषों के प्रतिशत में कोई महत्त्वपूर्ण गिरावट नहीं आई। यह भी एक मुख्य चिंतनीय विषय है। भारत में **न्यून-भार** बच्चों हेतु रुझान लगातार गिर रहा है (यह 1992-93 में 52 प्रतिशत से घटकर 2015-16 में 38 प्रतिशत रह गया)।

तालिका 7.2 : वयस्क एवं बाल कुपोषण : 1993.2016

वयस्क कुपोषण (BMI)	NFHS I (1992-93)	NFHS II (1998-99)	NFHS III (2005-06)	NFHS IV (2015-16)

सामान्य (18.5) से कम, स्त्रियों का BMI	NA	35.8	35.5	22.9
सामान्य (18.5) से कम पुरुषों का BMI	NA	NA	34.2	20.2
स्त्रियों का रक्ताल्पता स्तर (आयु 15–49) (12)	NA	51.8	55.3	53
पुरुषों का रक्ताल्पता स्तर (आयु 15–49)(13)	NA	NA	24.2	22.7
अति-भार स्त्रियाँ (>25)	NA	10.6	12.6	20.7
अति-भार पुरुष (>25)	NA	NA	9.3	18.6
न्यून-भार बच्चे (%)	53.4	47	42.5	35.7
दुबले बच्चे (%)	7.5	5.5	9.8	21
रुद्ध-विकास ग्रस्त बच्चे (%)	52	45.5	48	38.4

स्रोत : राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS) –I, II, III और IV, उपलब्ध नहीं।

बहरहाल, दुबले बच्चों का प्रतिशत जो राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-II (NFHS-II) तक घट रहा था, 2015-16 में अब तक का सर्वाधिक, यानी 21 प्रतिशत, तक पहुँच गया है। रुद्ध.विकास ग्रस्त बच्चों का प्रतिशत भी उक्त सर्वेक्षण (NFHS-II) तक गिर रहा था, परंतु वह भी तृतीय सर्वेक्षण (NFHS-III) में बढ़कर 48 प्रतिशत हो गया किन्तु जो चतुर्थ सर्वेक्षण (NFHS-IV) में पुनः घटकर 38.4 प्रतिशत रह गया।

7.2.2 सशक्तता-समंजित जीवन वर्ष/अशक्तता-समंजित जीवन वर्ष

उपर्युक्त मापदंडों के अलावा, लोगों का स्वास्थ्य मानक निर्धारित करने हेतु दो और लोकप्रिय मापदंड हैं। ये हैं– सशक्तता-समंजित जीवन वर्ष (QALY) और अशक्तता. समंजित जीवन वर्ष (DALY)। पूर्ववर्ती (QALY) एक रोगभार का मापदंड है जिसमें जिए गए जीवन की गुणवत्ता एवं आयु दोनों शामिल होते हैं। एक QALY का अर्थ है – संपूर्ण स्वास्थ्य का एक वर्ष। दूसरी ओर; परवर्ती (DALY) में मापा जाता है कि खराब स्वास्थ्य, अशक्तता अथवा अल्पायु मृत्यु के कारण कितने वर्षों की हानि हुई। अतः, परवर्ती (DALY) स्वास्थ्य हानि दर्शाता है और पूर्ववर्ती (QALY) स्वास्थ्य लाभ दर्शाता है (यथा, QALY और DALY परस्पर विपरीत हैं)। इस प्रकार, व्यवहार में, परवर्ती (DALY) और पूर्ववर्ती (QALY) के बीच अंतर इस बात पर निर्भर करता है कि जीवन की गुणवत्ता हानि (DALY) के रूप में दर्शाई गई है अथवा लाभ (QALY) के रूप में। इसके अतिरिक्त किसी भी अंतर पर विचार उसी प्रकार किया जाएगा जिस प्रकार, रोग-भार निर्दिष्ट हों।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें)।

1) स्वास्थ्य एवं पोषण को किस प्रकार परिभाषित किया जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) पाँच प्रमुख स्वास्थ्य सूचक कौन-से हैं? इनमें से किनमें 1990 और 2015 की अवधि में अंतर्राष्ट्रीय रूप से लगभग 50 प्रतिशत तक की गिरावट आई है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) न्यून-पोषण के तीन उप-संघटक कौन-से हैं? उन्हें कैसे मापा जाता है?

.....

.....

.....

.....

4) 'वयस्क कुपोषण' किस प्रकार मापा जाता है? भारत के लिए इस संबंध में क्या उल्लेखनीय रुझान हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

5) भारत में न्यून-भार बच्चों के संबंध में क्या रुझान रहा है?

.....

.....

.....

.....

.....

6) सशक्तता-समंजित जीवन वर्ष और अशक्तता-समंजित जीवन वर्ष की अवधारणाओं के बीच भेद कीजिए।

.....

.....

.....

7.3 स्वास्थ्य व्यय

विगत वर्षों में, विश्वभर में, स्वास्थ्य परिचर्या पर व्यय निरंतर बढ़ा है। आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (OECD) के सदस्य देशों में चिकित्सा व्यय को समर्पित सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का अंश 1979 में 5.1 प्रतिशत से बढ़कर 2006 में 8.9 प्रतिशत हो गया। भारत में जन-स्वास्थ्य व्यय पर अनुरूप आँकड़े 1995 में सकल घरेलू उत्पाद के 1.1 प्रतिशत से मामूली रूप से बढ़कर 2014 में सकल घरेलू उत्पाद का 1.4 प्रतिशत हो गए। स्वास्थ्य परिचर्या को समर्पित सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत, खासकर जन.स्वास्थ्य व्यय, सभी देशों के समक्ष जन-वित्तीयन की चुनौती बना है। इसके लिए, उत्तरदायी कारकों को मोटे तौर पर निम्नलिखित दो शीर्षकों के अंतर्गत रखा जा सकता है।

माँग कारक

क) जनसमुदाय की वृद्धता : जनसमुदाय की औसत आयु में वृद्धि के साथ चिकित्सा रक्षा हेतु माँग भी बढ़ रही है।

ख) आय : यह आमतौर पर माना जाता है कि प्रति व्यक्ति सकल-घरेलू-उत्पाद संवृद्धि और स्वास्थ्य व्यय के बीच एक मज़बूत संबंध है। तथापि, स्वास्थ्य परिचर्या व्यय हेतु माँग की आय सुगम्यता भौगोलिक स्थिति, समय-सीमा आदि अनेक कारकों पर निर्भरता के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकती है।

ग) बीमा बाज़ार का प्रसार : वर्धमान स्वास्थ्य बीमा बाज़ार भी स्वास्थ्य परिचर्या व्यय हेतु माँग बढ़ा रहा है क्योंकि बीमा बढ़ती स्वास्थ्य परिचर्या लागत के जोखिम को संरक्षण देने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है।

आपूर्ति कारक

क) आपूर्तिकर्ता-प्रेरित माँग : कभी-कभी स्वास्थ्य-सेवा आपूर्तिकर्ता अपना बाज़ार भाग बढ़ाने के लिए स्वास्थ्य परिचर्या सुविधाओं की माँग का सृजन करते हैं। इसे आपूर्तिकर्ता-प्रेरित माँग कहा जाता है। ऐसा विभिन्न प्रकार से किया जाता है, जैसे– नई चिकित्सा प्रौद्योगिकी अपनाकर, ऐसी दवाएँ एवं उपचार प्रदान करके जो रोगी की दशा से कतई संबंध नहीं रखते, आदि।

ख) सामान्य-आर्थिक संवृद्धि : देश की आर्थिक संवृद्धि जनसमुदाय का जीवनस्तर सुधार रही है जिसने उन्नत चिकित्सा प्रौद्योगिकी की उपलब्धता को भी बढ़ा दिया है। इससे स्वास्थ्य परिचर्या व्यय की माँग उत्प्रेरित होती है।

7.3.1 स्वास्थ्य व्यय के स्रोत

स्वास्थ्य परिचर्या पर व्यय हेतु दो वृहद् मार्ग हैं – (i) सार्वजनिक व्यय के माध्यम से राज्य (यथा, जन-स्वास्थ्य व्यय– PHE); और (ii) अपने व्यक्तिगत व्यय के माध्यम से लोग/परिवार (यथा, जेब-से-व्यय– OPE)। सार्वजनिक व्यय में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संबंधी सभी सरकारी खर्च आते हैं। इसमें चिकित्सा शिक्षा, अनुसंधान, अस्पताल, जन-स्वास्थ्य केंद्रों आदि पर होने वाले व्यय के साथ-साथ सरकार द्वारा दिए जाने वाले विभिन्न प्रकार के साहाय्य भी शामिल होते हैं (जैसे– देशभर में उत्तर

से दक्षिण व पूर्व से पश्चिम कार्यरत प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों PHCs का विशाल संजाल, ईएसआई/सीजीएचएस जैसी सरकारी योजनाएँ, चिकित्सा पुनर्पूतियाँ, आदि)। स्वास्थ्य व्यय, आमतौर पर, इन कारणों से बढ़ रहा है–(i) बढ़ी जीवन.प्रत्याशा; (ii) वृद्ध आबादी का अंश बढ़ने के साथ जनांकीय परिवर्तन; और (iii) दीर्घकालिक रोगों में वृद्धि। जबकि भारत में प्रति-व्यक्ति जन-स्वास्थ्य व्यय 1995-2014 की अवधि में लगभग पाँच गुना बढ़ा है, जैसा कि हमने ऊपर देखा, सकल घरेलू उत्पाद (GDP) के प्रतिशत के रूप में यह 1995-2014 की अवधि में 1.1 से अंशतः बढ़कर मात्र 1.4 प्रतिशत ही हो पाया है (तालिका 7.3)। जेब-से-व्यय (OPE), दूसरी ओर (जो कि परिभाषा से लागत सहयोग व रोगियों और उनके परिवारों द्वारा स्वयं उठाए गए अन्य खर्चों का संदर्भ देता है), बहुत ऊँचा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के आकलन के अनुसार, भारत में स्वास्थ्य परिचर्या पर कुल जेब-से-व्यय 2005 में 76 प्रतिशत से बढ़कर 2012 में लगभग 90 प्रतिशत हो गया है। दरअसल, इस खर्च (OPE) में इसी प्रकार का रुझान इस काल में अनेक देशों में देखा गया है।

तालिका 7.3 : भारत में स्वास्थ्य व्यय की रूपरेखा–1995-2014

भारत	प्रति व्यक्ति स्वास्थ्य व्यय (अमेरीकी $)	जन-स्वास्थ्य व्यय (स.घ.उ. केरूप में)	जन-स्वास्थ्य व्यय–कुल सरकारी खर्च के रूप में)	जन-स्वास्थ्य व्यय–कुल स्वास्थ्य व्यय के रूप में)
1995	16	1.1	4.3	26.2
2014	75	1.4	4.4	30

स्रोत : विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO)

तालिका 7.4 : कुल स्वास्थ्य व्यय (THE) में जेब-से-व्यय (OPE) का अंश

देश	THE में OPE का अंश (2005)	THE में OPE का अंश (2015)
भारत	76.1	89.2
पाकिस्तान	80.9	86.8
बांग्लादेश	62.6	92.9
नेपाल	62.6	79.9

स्रोत : विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO)

7.4 भारत में जन-स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली

जन-स्वास्थ्य समाज में संगठित प्रयासों एवं जानकारी के आधार पर चयनों के माध्यम से रोग निवारण, जीवन प्रवर्धन एवं मानव स्वास्थ्य संवर्धन की प्रक्रिया है। स्वास्थ्य परिचर्या में न केवल चिकित्सा परिचर्या आती है, बल्कि निवारक परिचर्या के अनेक पहलू भी आते हैं। भारतीय स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली पश्चगामी है क्योंकि निजी जेब-से-व्यय स्वास्थ्य परिचर्या वित्तीयन की लागत पर भारी रहता है। एक आदर्श स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली वित्तीय लागत के निष्पक्ष वितरण एवं सक्षम सेवा-प्रदायकों के साथ सभी को सुलभ होनी चाहिए।

स्वास्थ्य परिचर्या व्यय को सार्वजनिक और निजी व्यय में विभाजित किया जा सकता

है। सरकार द्वारा अपनाई गई अनेक विकासोन्मुखी नीतियों के बावजूद आर्थिक/क्षेत्रीय/और स्त्री-पुरुष विषमताएँ भारत में स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए चुनौतियाँ ही बनी रही हैं। उदाहरण के लिए, 75 प्रतिशत स्वास्थ्य संसाधन शहरी क्षेत्रों में संकेंद्रित हैं, जहाँ केवल 27 प्रतिशत जनसंख्या ही रहती है। इस विषमता को दूर करने के लिए जन-स्वास्थ्य नीति को स्वास्थ्य संबंधी सामाजिक निर्धारकों को ध्यान में रखते हुए स्वास्थ्य संवर्धन तथा रोग निवारण एवं नियंत्रण पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। जन-स्वास्थ्य नीति का ध्यान-केंद्र न सिर्फ रोग की रोकथाम करने पर होना चाहिए, बल्कि सामाजिक स्तर पर संगठित कार्रवाई के माध्यम से स्वास्थ्य को प्रोत्साहन देना भी होना चाहिए।

भारत एक व्यापक रूप से विविध सामाजिक-राजनीतिक जनांकिकीय एवं रुग्णता प्रतिमानों वाला विश्व का दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला देश है। भारत के अधिकांश राज्यों के सामने गंभीर स्वस्थ जन-शक्ति का अभाव है। इस अभाव को दूर करने के लिए बड़ी संख्या में स्वास्थ्य सेवा-प्रदाताओं, प्रबंधकों एवं सहायक कर्मियों की आवश्यकता है। अनेक राज्य किसी संगत रीति से मूलभूत, न्यूनतम जीवन-रक्षक सेवाएँ मुहैया कराने तक में अक्षम हैं। भारत में, जन-स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली की चुनौतियाँ, इस प्रकार, संक्षेप में प्रस्तुत की जा सकती हैं– (i) जन-स्वास्थ्य परिचर्या हेतु अपर्याप्त संसाधन उपलब्धता; (ii) गंभीर भौगोलिक एवं सामाजिक विषमता; (iii) स्वास्थ्य कार्यक्रमों के बीच अपर्याप्त एकीकरण; (iv) सामुदायिक संकेंद्रण का अभाव; (v) खंडित प्रकार्यात्मक दायित्व; (iv) प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या पर अपर्याप्त ध्यान; (vii) अपर्याप्त जन-स्वास्थ्य उन्मुखता; आदि।

7.4.1 निवारक एवं रोगहर स्वास्थ्य परिचर्या

निवारक स्वास्थ्य परिचर्या का तात्पर्य रोगोपचार के विपरीत रोग की रोकथाम हेतु किए जाने वाले उपायों से है। इसमें रोग होने से रोकना अथवा उसे टालना अथवा रोग का और अधिक प्रसार अथवा प्रकरण घटाना शामिल होता है। इसके लिए उठाए गए अनेक कदमों में शामिल हैं– (i) मद्य दुरुपयोग परामर्श; (ii) रक्तचाप जाँच; (iii) कोलेस्ट्रॉल जाँच; (iv) अवसाद जाँच; (v) मधुमेह एवं आहार परामर्श; (vi) हैपटाइटिस (पीलिया) 'बी' और 'सी' की जाँच; (vii) उपदंश जाँच; (viii) रक्ताल्पता जाँच; (ix) स्तनपान के महत्त्व के प्रचार का अभियान; (x) फॉलिक एसिड अनुपुरक; (xi) मूत्रमार्ग संक्रमण जाँच; (xii) स्वलीनता जाँच (18–24 माह); (xiii) प्रतिरक्षाकरण/टीकाकरण; (xiv) लौह अनुपूरक; (xv) दृष्टि जाँच; आदि।

रोगहर या आरोग्यकर स्वास्थ्य परिचर्या से अभिप्राय है– किसी रोग के उपचार हेतु मरीज़ों की मदद करने के लिए अस्पताल में भर्ती कराना। वर्तमान में भारत में 5 लाख से अधिक प्रशिक्षित डॉक्टर, 7 लाख सहायक आय प्रसाविकाएँ (AWMs), 22,975 जन-स्वास्थ्य केंद्र (PHCs) एवं 2,935 बाल स्वास्थ्य परिचर्या केंद्र (CHCs) हैं। कुल 22,000 औषधालय तथा 2,800 अस्पताल भी हैं। इसके बावजूद सुविधाओं, आपूर्ति एवं कर्मचारियों का अभाव बना ही हुआ है। विभिन्न राज्य-संचालित इकाइयों की मुख्य समस्या आय-अभाव अर्थात् बजट की कमी है। पुनरावर्ती लागतों के लिए न्यून-प्रावधान एक अन्य समस्या है। निजी अस्पतालों को किसी सामाजिक दायित्व की पूर्ति हेतु शर्तों के साथ उदार कर संरचना वाली रियायती ज़मीन दी जाती है। तथापि, यह सुनिश्चित करने के लिए कोई उचित जाँच-पड़ताल व्यवस्था नहीं है कि वे इन दायित्वों का पालन कर भी रहे हैं या नहीं। बड़ी संख्या में निजी डॉक्टरों और डॉक्टर.

अभिकरणों द्वारा चलाए जा रहे उपचार गृहों पर कोई समुचित गुणवत्ता नियंत्रण भी नहीं है।

7.4.2 स्वास्थ्य वित्तीयन

एक विचार से स्वास्थ्य परिचर्या व्यय अधिकांशतः स्वतंत्र रूप से चुने जाने की बजाय लोगों पर थोपे जाते हैं। एक और भी गंभीर आवश्यकता यह है कि वित्त प्रबंध 'चुकाने की क्षमता' के अनुसार होना चाहिए। एक प्रगतिशील वित्तीयन प्राधार स्वास्थ्य परिचर्या व्यय का बड़ा हिस्सा ग़रीबों की बजाय अमीरों की आय से लेता है। यदि स्वास्थ्य परिचर्या व्यय का नितांत स्तर अमीर और ग़रीब के लिए लगभग एक-सा ही हो तो यह व्यय गरीबों की आय के अधिकांश भाग के समान (समस्त से अधिक भी) हो सकता है। अनेक अध्ययन दर्शाते हैं कि प्रयोक्ता शुल्क विकासशील देशों की स्वास्थ्य परिचर्या वित्तीयन प्राधार में एक सशक्त पश्चगामी कदम ही है।

स्वास्थ्य वित्तीयन दो भागों में विभाजित है– लोक वित्तीयन और निजी अथवा व्यक्तिगत वित्तीयन। सरकार के समक्ष (i) कितना निवेश कहाँ किया जाए, और (ii) स्वास्थ्य निवेश में दक्षता एवं निष्पक्षता के बीच संतुलन बनाए रखने में ये मुख्य चुनौतियों आती हैं : (क) बढ़ता जन-स्वास्थ्य व्यय (जिसकी वजह से सरकार, बजट बढ़ाने के अतिरिक्त, कभी-कभी सेवाएँ प्रदान करने के लिए निजी क्षेत्र के साथ साझेदारी करती है। जैसे, पल्स पोलियो टीकाकरण); (ख) उपलब्ध अपर्याप्त संसाधनों का अधिक कुशल और प्रभावी प्रयोग; (ग) बढ़ती स्वास्थ्य परिचर्या लागत से ग़रीबों को संरक्षण प्रदान करना।

उपर्युक्त में से प्रथम, अर्थात् जन-स्वास्थ्य व्यय के उद्देश्य पर हम भाग 7.3 में संक्षिप्त चर्चा कर चुके हैं। बजट के कुशल प्रयोग विषयक दूसरे उद्देश्य के संबंध में सरकार ने अभी हाल ही में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (NRHM) के तहत अपनी आधारिक संरचना को पुनर्व्यवस्थित किया है। इसके बाद वह उद्देश्य आता है जो ग़रीब और ज़रूरतमंदों को बढ़ता स्वास्थ्य परिचर्या लागत चुका पाने में वित्तीय सहायता से संबद्ध है। यह उद्देश्य, कम से कम अंशतः एक ऐसा स्वस्थ स्वास्थ्य बीमा बाज़ार स्थापित करने की संस्थागत कार्यप्रणाली से संबद्ध है जिसमें सरकार की विनियामक भूमिका का एक महत्त्वपूर्ण स्थान होगा।

विगत दो दशकों में, केंद्र व राज्य सरकारें समाज के अभावग्रस्त वर्गों की स्वास्थ्य लागतों को चुकाने के लिए बीमा की किश्त भी देती रही है। इन प्रयासों के साथ भी स्वास्थ्य बीमा किश्त के मुख्य स्रोतों का वर्तमान वितरण इस प्रकार है – घर या अपनी जेब से (49.5 प्रतिशत), सरकार (27 प्रतिशत) व अन्य कर्मचारी वर्ग (23.5 प्रतिशत)। इस प्रकार का स्वास्थ्य बीमा संरक्षण अधिकांशतः अंतरंग (वे रोगी जो अस्पताल में दाखिल हैं) की देखभाल हेतु होता है। सर्वसमावेशी स्वास्थ्य बीमा (यथा, अंतरंग/बहिर्रंग रोगी, निवारक, प्राथमिक एवं अस्पताल भर्ती-उपरांत देखभाल) सरकार की मात्र कुछ चुनी हुई सामाजिक स्वास्थ्य बीमा योजनाओं, जैसे कर्मचारी राज्य बीमा निगम (ESI), केंद्र सरकार स्वास्थ्य योजना (CGHS), आदि, द्वारा ही प्रदान किया जाता है जो कुल जनसंख्या के केवल एक छोटे.से वर्ग की ही ज़िम्मेदारी लेता है। कुछ निजी बीमा कंपनियाँ अस्पताल भर्ती पूर्व और भर्ती उपरांत अनुवर्तन सेवा प्रदान कर रही हैं जिसका लाभ उठाने में समाज का एक सुसंपन्न वर्ग ही सक्षम होता है। सर्वव्यापी स्वास्थ्य संरक्षण, इसीलिए, भारत के नीति-निर्माताओं और सरकार के लिए एक दूरस्थ चुनौती ही बना हुआ है।

बोध प्रश्न 2 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें)।

1) सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में भारतीय जन-स्वास्थ्य व्यय किस प्रकार हाल की समयावधि में आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (OECD) देशों से तुलनीय रहा है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) 'माँग पक्ष' से कौन-से तीन कारक स्वास्थ्य परिचर्या पर अधिक खर्च करने के सरकार के निर्णय को प्रभावित करते हैं? क्यों?

.....

.....

.....

.....

.....

3) 'आपूर्ति पक्ष' से जनता के लिए उच्चतर स्वास्थ्य परिचर्या व्यय को प्रभावित करने में कौन-से कारक योगदान देते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

4) 'स्वास्थ्य व्यय' के दो मुख्य स्रोत कौन-से हैं? इनमें से कौन-सा एशियाई देशों पर प्रभावी है? भारत में इसका वर्तमान स्तर क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

5) क्या आप भारतीय स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली को पश्चगामी मानते हैं? क्यों?

.....

.....

.....

.....

.....

6) भारत में जन-स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली के समक्ष कौन-सी प्रमुख चुनौतियाँ हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

7.5 भारत में स्वास्थ्य नीति

जब हम भारत में स्वास्थ्य और उससे संबद्ध नीतियों पर विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा, बाल वर्ग आदि हेतु राष्ट्रीय नीतियों के लिहाज से हमारे पास सुनियोजित नीति दिशा-निर्देश हैं। ये नीतियाँ राजनीतिक प्रतिबद्धता को दर्शाते हुए स्वास्थ्य एवं विकास हेतु एक व्यापक प्राधार प्रदान करती हैं। देश का संविधान (निदेशक सिद्धांत) और राष्ट्रीय नीतियाँ संसाधनों के संकलन और वितरण हेतु विस्तृत दिशा-निर्देश इस प्रकार देते हैं कि आम जनता की स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकें। समय-समय पर संविधान संशोधन एवं राज्य-विधानसभाओं द्वारा उनका अनुमोदन भी आयोजकों और प्रशासकों को व्यापक दिशा-निर्देश देते हैं। विगत वर्षों में देश ने अपनी स्वास्थ्य परिचर्या वितरण व्यवस्था को विस्तीर्ण किया है और उसके पास मात्र कुछ श्रेणियों व विशेषीकृत प्रशिक्षण सुविधाओं को छोड़कर, अधिकांश स्वास्थ्य कर्मियों की पर्याप्त उपलब्धता है।

एक राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन 2012.17 की अवधि में विशिष्ट लक्ष्यों के साथ आरंभ किया गया। इस मिशन के मुख्य उद्देश्य हैं – (i) गरीबों के स्वास्थ्य की रक्षा करना; (ii) जन-स्वास्थ्य प्रणाली को सुदृढ़ करना; (iii) उच्चतम स्वास्थ्य मानक प्राप्त करने हेतु समुदाय को सशक्त करना; और (iv) उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग को इष्टतम करने की क्षमता बढ़ाना। इस मिशन के तहत अनेक योजनाएँ शुरू की गई हैं। इनमें कुछ हैं–

क) **राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम** : यह चार D, अर्थात् जन्मजात दोष (defects), रोग (diseases), अभाव (deficiency) व विकासात्मक विलम्ब (developmental delay), के लिहाज से बच्चों (जन्म से लेकर 18 वर्ष की आयु तक) में 'शीघ्र ज्ञान, शीघ्र निदान' अपनाने हेतु एक पहल है।

ख) **जननी शिशु सुरक्षा कार्यक्रम** : यह गर्भवती महिलाओं व नवजात रोगियों के लिए है। इस योजना के माध्यम से रोग निदान, उपचार, आहार, व अधिकांश औषधियाँ निःशुल्क प्रदान की जाती हैं। घर से उपचार-गृह तक परिवहन भी निःशुल्क प्रदान किया जाता है। इसके अलावा, गर्भवर्ती महिलाओं के लिए शल्य-प्रसव भी मुफ्त किया जाता है।

ग) **प्रजनन, मातृत्व, नवजात, बाल एवं किशोर स्वास्थ्य** : वर्ष 2013 के आरंभ में इस योजना में वर्ष 2017 तक निम्नलिखित दरें घटाने के मुख्य लक्ष्य हैं – (i) शिशु मर्त्यता दर 25 प्रति 1000 जीवित नवजात; (ii) मातृ मर्त्यता दर 100 प्रति 100,000 जीवित नवजात; तथा (iii) कुल प्रजनन क्षमता दर 2.1.

घ) **राष्ट्रीय किशोर स्वास्थ्य कार्यक्रम** : वर्ष 2014 में आरंभ इस योजना का उद्देश्य है– पोषण, मानसिक स्वास्थ्य व अन्य स्वास्थ्य-प्रोत्साहन प्रस्तावों के माध्यम से हस्तक्षेप कर देश में 25.3 करोड़ किशोर-किशोरियों तक पहुँचना।

ङ) **भारत नवजात कार्य योजना** : यह भी वर्ष 2014 में शुरू की गई, जिसके मुख्य उद्देश्य हैं– नवजात शिशुओं का स्वास्थ्य सुधारना और मृत प्रसव संख्या घटाना।

7.5.1 राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति (2002) ने माना कि देश के रुग्णता एवं मर्त्यता स्तर असाधारण रूप से ऊँचे हैं और इस कारण सशक्त निवारक एवं आरोग्यकर उपाय करना आवश्यक है। उसने इस बात पर विशेष ध्यान दिया कि महिलाओं व बच्चों में वृहद् एवं सूक्ष्म पोषक तत्व अभाव बहुत अधिक है। यहाँ मलेरिया, तपेदिक एवं एचआईवी जैसे प्रमुख रोगों पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। इस परिदृश्य में उक्त नीति के मुख्य आग्रह ये हैं–

1) अपने क्षेत्रों में नीतियाँ लागू करने के लिए राज्य जन-स्वास्थ्य प्रबंधों को अधिक लचीलापन;

2) रोग नियंत्रण कार्यक्रमों हेतु ऊर्ध्वस्थ क्रियान्वयन संरचना;

3) देश के पिछड़े क्षेत्रों का दायित्व लेने हेतु पराचिकित्सा कर्मियों को अधिक प्रशिक्षण;

4) देशभर में चिकित्सा महाविद्यालयों का असमान वितरण सुधारना;

5) आणविक जीव-विज्ञान आदि कुछ चिकित्सा शास्त्र-विधाओं को विकसित अवसंरचना मुहैया कराना;

6) परिवार औषधि एवं जन-स्वास्थ्य में विशेषज्ञता प्राप्त लोगों की संख्या बढ़ाना;

7) सामान्य औषधियों एवं टीका-द्रव्यों के प्रयोग को बढ़ावा देना;

8) जन-स्वास्थ्य के क्षेत्र में मानसिक स्वास्थ्य शामिल करना;

9) चूँकि कॉलेज व स्कूल जाने वाले बच्चे निवारक स्वास्थ्य परिचर्या सिद्धांत मन में बैठाने हेतु सर्वाधिक संवेदनशील लक्ष्य होते हैं, यह नीति स्वास्थ्य-प्रोत्साहन व्यवहार संबंधी जागरूकता बढ़ाने के लिए इन युवाओं को ही लक्ष्य बनाने का सुझाव देती है; तथा

10) ग़ैर-सरकारी सेवा प्रदाताओं के बीच स्वास्थ्य-संबंधी अनुसंधान को प्रोत्साहन देना।

राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य नीति (2014) के लक्ष्य हैं– (i) मानसिक स्वास्थ्य परिचर्या आरंभिक रूप से सुलभ कराना; (ii) मानसिक स्वास्थ्य परिचर्या सेवा देश के कमज़ोर

तबके तक पहुँचाना; (iii) मानसिक रोग का जोखिम और कलंक घटाना; (iv) मानसिक रुग्णता से ग्रस्त लोगों के उपचार हेतु कुशल संसाधनों की आपूर्ति सुनिश्चित करना; और (अ) मानसिक स्वास्थ्य विकार के सामाजिक, जैविक एवं मनोवैज्ञानिक निर्धारकों की पहचान करना। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2017 भी सतत् विकास लक्ष्यों से जुड़ी आम गुणवत्ता वाली स्वास्थ्य परिचर्या सेवाओं (बिना वित्तीय विपत्ति के) की सार्वत्रिक सुलभता सुनिश्चित कर स्वास्थ्य एवं आरोग्य का यथासंभव उच्चस्तर लब्ध करने के लक्ष्य को ही दोहराती है। सर्वव्यापी स्वास्थ्य संरक्षण सुलभ करने के लिए इसके तहत पहचाने गए विशिष्ट सोपान इस प्रकार हैं– (i) सरकारी अस्पतालों और लाभार्थ इतर निजी रक्षा प्रदाताओं के माध्यम से मातृ, बाल एवं किशोर स्वास्थ्य हेतु एक व्यापक एवं निःशुल्क प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या सेवा शुरू करना; और (ii) एक उत्तम गुणवत्ता वाली द्वितीयक एवं तृतीयक सेवा प्रदान करना। उक्त नीति विशेष रूप से स्वास्थ्य परिचर्या आवश्यकताओं पर जेब-से-व्यय घटाने की आवश्यकता पर बल देती है। इस नीति के अन्य मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं– (i) वर्ष 2025 तक जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा 67.5 से बढ़ाकर 70 करना; (ii) वर्ष 2025 तक पाँच-पूर्व मर्त्यता घटाकर 23 पर लाना और वर्ष 2020 तक मातृ मर्त्यता घटाकर 100 पर लाना; (iii) वर्ष 2019 तक शिशु मर्त्यता दर घटाकर 28 पर लाना; (iv) वर्ष 2025 तक नवजात मर्त्यता घटाकर 16 पर लाना और मृत प्रसव को इकाई के अंक तक गिराना; (v) वर्ष 2018 तक कुष्ठरोग का निराकरण करना; (vi) वर्ष 2025 तक 90 प्रतिशत नवजात शिशुओं का संपूर्ण टीकाकरण; (vii) वर्ष 2025 तक उच्च-प्राथमिकता ज़िलों में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्वास्थ्य परिचर्या हेतु पराचिकित्सा कर्ताओं एवं स्वास्थ्य कर्मियों की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित करना; (viii) वर्ष 2020 तक स्वास्थ्य प्रणाली विषयक जानकारी का राज्य-स्तरीय इलेक्ट्रॉनिक डेटाबेस सुनिश्चित करना; आदि।

उक्त 2017 की नीति, तद्नुसार, एक वर्धमान आश्वस्ति आधारित दृष्टिकोण प्रस्तुत करने पर अभिलक्षित है। तथापि, यह नीति दो प्रकार की आलोचनाओं हेतु कारण देती है : (i) अभिकरण-पणधारी समालोचना; और (ii) साध्यता समालोचना। प्रथम में, जबकि नीति पहचानता है कि क्या किया जाना चाहिए, वह उसके क्रियान्वयन के 'कौन, क्या और कैसे' पक्ष को नहीं पहचानती। ऐसा शायद इस कारण है कि स्वास्थ्य परिचर्या राज्य का विषय है परंतु वितरण व्यवस्थाओं की जाँच-पड़ताल व्यवस्था भी सुधारी जानी ज़रूरी है।

दूसरी, साध्यता समालोचना में, यह नीति जन-स्वास्थ्य परिचर्या सुविधाओं के वित्तीयन में सुधार हेतु आह्वान करता है जहाँ प्रचालन लागतें प्राथमिक देखभाल के लिए एक प्रतिव्यक्ति आधार पर देखरेख प्रावधान हेतु प्रतिपूर्ति के रूप में होंगी। परंतु यह नीति इस विषय पर मौन है कि ये वित्तीय सुधार किस प्रकार होंगे और इन्हें कौन संचालित करेगा। इस प्रकार, जब यह नीति भारत की स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली के तीन । अर्थात् सुलभता (Access), क्रय-सामर्थ्य (Affordability), उत्तरदेयता (Accountability) के लिहाज से समस्याओं को निपटाने की आवश्यकता कहीं अधिक स्पष्ट रूप से पहचानती है, यह इनमें से किसी भी A से, खासकर जब जन-स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली व्यष्टिक और समष्टिक प्रबंधकीय अदक्षताओं के तहत अवनति पर है, और प्रशिक्षित एवं क्षमता-निर्माण प्रयासों से संबद्ध समस्याओं पर कोई भी सुसंगत, साकार कार्य योजना प्रदान करने में विफल है।

बोध प्रश्न 3 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें)।

1) राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन : 2012.2017 के कोई चार विशिष्ट लक्ष्य बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2017 के अंतर्गत 'सर्वव्यापी स्वास्थ्य संरक्षण' हासिल करने हेतु पहचाने गए दो विशिष्ट सोपान क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य नीति, 2014 के पाँच प्रमुख लक्ष्य बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

4) किन मोर्चों पर राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2017 की समालोचना की जाती है?

.....

.....

.....

.....

.....

7.6 सार- संक्षेप

भारत जैसे एक विकासशील देश के लिए अपने जन-समुदाय की पौषणिक एवं सामान्य स्वास्थ्य स्थिति सुधारना सरकार का महत्त्वपूर्ण सरोकार है। बेशक भारत के लिए अनेक प्रमुख स्वास्थ्य संसूचकों में समय के साथ एक क्रमिक सुधार हुआ है, यह सुधार बहुत ही धीमी दर से हुआ है। विशेष रूप से, पाँच-पूर्व मर्त्यता दर अब भी 50 प्रतिशत बनी ही हुई है। पोषण स्थिति के प्रसंग में, दुबलापन और रुद्ध-विकास के मामले बढ़े

रहे हैं, जो कि भयप्रद है। उक्त स्थिति को सुधारने के लिए भारत सरकार ने अनेक नीतियाँ एवं कार्यक्रम शुरू किए हैं। फिर भी, स्वास्थ्य पर इसका समग्र सरकारी खर्च, जो कि सकल घरेलू उत्पाद के 1.5 प्रतिशत से भी कम है, बहुत ही कम है। परिणामतः कुल व्यय में जेब-से व्यय का औसत अंश न सिर्फ़ बहुत अधिक रहा (वर्ष 2012 में 90 प्रतिशत), बल्कि इसने एक बढ़ता रुझान निरंतर जारी भी रखा है। इसके अलावा, अधिकांश जन-स्वास्थ्य परिचर्या अवसंरचना शहरी क्षेत्रों में ही संकेंद्रित है। स्वास्थ्य कार्यबल की पर्याप्त आपूर्ति का अभाव भी एक सरोकार का क्षेत्र रहा है। स्वास्थ्य बीमा समाज के साथ-साथ सरकारी विभागों में भी महत्त्व प्राप्त करता जा रहा है। सरकार विभिन्न नीतियों के माध्यम से और उन्नत निरोधक एवं रोगहर सेवाएँ प्रदान करके स्थिति सुधार रही है। विभिन्न नीतियों में से कुछ महत्त्वपूर्ण इस प्रकार हैं– राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, भारतीय राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य नीति (2014), राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति (2002, 2017), आदि।

7.7 शब्दावली

Z-मान : Z-मान 'वास्तविक मान (अथवा प्रेक्षित मान) एवं माध्यिक मान के बीच अंतर' तथा निदर्श के मानों के 'मानक विचलन' का 'अनुपात' है। चूँकि अनुपात का अंश किसी जन-समुदाय के लिए वास्तविक एवं माध्यिक मान के बीच कोई अंतर होता है, कुछ Z-मान धनात्मक होते हैं तो कुछ ऋणात्मक। जब वास्तविक मान माध्यिक मान से अधिक होगा तो वह धनात्मक होगा। यह उत्तर स्वास्थ्य का सूचक है। इसके विपरीत, जब Z-मान ऋणात्मक होता है अर्थात् जब वास्तविक मान माध्यिका से कम होता है तो Z का ऋणात्मक मान निकृष्ट स्वास्थ्य का सूचक होगा

शरीर संहति सूचक (BMI) : यह लोगों की लम्बाई हेतु समंजित शारीरिक मोटापे का माप है। यह ऊँचाई वर्ग मीटर द्वारा विभाजित शरीर के किलोग्राम भार के रूप में मापा जाता है। तद्नुसार, यदि लम्बाई 175 सेमी. है और भार 70 किग्रा., तो BMI = 70 / (1.75 x 1.75)= 22.86 (चूँकि 1 मीटर =100 सेमी., 175 सेमी. = 1.75 मीटर)।

मृत प्रसव : मृत प्रसव का अर्थ है – किसी शिशु की 28 सप्ताह गर्भस्थ रहने के बाद मृत्यु, यह वर्ष के दौरान मृत प्रसव संख्या प्रति 1000 जन्म (जिसमें जीवित व मृत प्रसव शामिल हैं) के रूप में मापा जाता है।

कुल प्रजनन क्षमता दर : कुल प्रजनन क्षमता दर (TFR) उन बच्चों की औसत संख्या है जो किसी स्त्री के प्रजनन काल में जन्म लेते है यदि वह अपने पूरे प्रजनन काल में जीवित रहती। TFR का मान 2.1 लिया जाता है क्योंकि यह किसी स्त्री के उन बच्चों की औसत संख्या है जिन्हें वह यदि वह प्रचलित प्रजनन क्षमता दरों के

अधीन जन्म दे सकती है।

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Neun and Santerre: *Health Economics: Theories, Insights and Industry Study*.

2) Ministry of health and family welfare, Government of India: National Family Health Survey (I,II,III and IV).

3) Government of India: RBI Bulletin.

4) Ministry of health and Family Welfare, Government of India: National Health Policy.

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) स्वास्थ्य का अर्थ है– 'रुग्णता से मुक्ति'। पोषण का अर्थ है– वह प्रक्रिया जिसके माध्यम से शरीर किसी के द्वारा खाए गए भोजन में विद्यमान पोषक तत्वों की वांछित मात्रा अवशोषित कर लेता है। तद्नुसार, यह पोषाहार का एक मापदंड है।

2) शिशु मर्त्यता, पाँच-पूर्व मर्त्यता, नवजात मर्त्यता तथा मातृ मर्त्यता दर। मातृ मर्त्यता दर वर्ष 1990 और 2015 के बीच लगभग आधी हो गई है।

3) कम-वज़न, दुबलापन और रुद्ध-विकास न्यून पोषण के तीन उप-घटक हैं। ये किसी Z-स्कोर से विचलन के संदर्भ में मापे जाते हैं।

4) शरीर भार संहति, रक्ताल्पता स्तर व भाराधिक्य द्वारा कालांतर में न्यून-भार का महिलाओं व पुरुषों का घटता रुझान देखा गया।

5) भारत में न्यून-भार बच्चों हेतु रुझान लगातार गिर रहा है (यह 1992.93 में 52 प्रतिशत से घटकर 2015.16 में 38 प्रतिशत रह गया।

6) QALY रोग भार का मापदंड है जबकि DALY स्वास्थ्य हानि दर्शाता है। विलोम के रूप में लिए जाने पर QALY भी स्वास्थ्य मापता है।

बोध प्रश्न 2

1) OECD देशों के लिए, वर्ष 1979-2006 में, यह GDP के 5.1 प्रतिशत से 8.9 प्रतिशत तक। भारत में, 1995-2014 में, यह सकल घरेलू उत्पाद के 1.1 प्रतिशत से घटकर 1.4 ही रही।

2) जन-समुदाय का बूढ़ा होना, आय और बीमा बाज़ार का प्रसार।

3) आपूर्ति-प्रेरित माँग और सामान्य आर्थिक वृद्धि।

4) PHE और OPE एशियाई देशों के लिए OPE 80 प्रतिशत से अधिक है। भारत के लिए, इसका अनुमान वर्ष 2012 में 89.2 प्रतिशत आकलित हुआ।

5) हाँ, ऊँचे निजी जेब-से-व्यय के चलते एक आदर्श स्वास्थ्य परिचर्या प्रणाली

सरकारी एवं निजी स्वास्थ्य परिचर्या व्यय के बीच वित्तीय लागत के वितरण के साथ सभी के लिए सुलभ है।

6) जन-स्वास्थ्य परिचर्या, गंभीर भौगोलिक एवं सामाजिक विषमता, स्वास्थ्य कार्यक्रमों के बीच अपर्याप्त एकीकरण, सामुदायिक संकेंद्रण का अभाव, आदि।

बोध प्रश्न 3

1) ग़रीबों के स्वास्थ्य की रक्षा करें, जन-स्वास्थ्य प्रणाली सशक्त करें, अधिकतम स्वास्थ्य मानक लब्ध करने के लिए समुदाय को सशक्त बनाएँ, उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग इष्टतम करने के लिए दक्षता बढ़ाएँ।

2) सरकारी अस्पतालों तथा उत्तम गुणवत्ता वाले द्वितीयक एवं तृतीयक स्वास्थ्य परिचर्या सेवा के माध्यम से मातृ, बाल एवं किशोर स्वास्थ्य हेतु व्यापक एवं निःशुल्क प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या सेवा की शुरुआत।

3) मानसिक स्वास्थ्य परिचर्या प्रदान करने के लिए, देश के कमज़ोर तबके को मानसिक स्वास्थ्य सेवा सुलभ कराना, आदि (उपभाग 7.5.1)

4) दो आधारों पर : एक, अभिकरण पणधारी समालोचना; और दूसरे, साध्यता आधारित समालोचना (उपभाग 7.5.1)।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY